रामाश्रम सत्संग डिजिटल प्रकाशन

# संत-वचन

## ( भाग ५ )

परमसंत डा. श्री कृष्णलाल जी महाराज

के प्रवचनों का संकलन

रामाश्रम सत्संग (रजि०)

सिकंदराबाद (यू०पी०)

*प्रकाशक :*

*आचार्य, रामाश्रम सत्संग (रजि०)*

*सिकन्द्राबाद (उ०प्र०)*

*प्रथम संस्करण १०००*

*द्वितीय संस्करण १०००*

*मुद्रक :*

*विवेक मुद्रणालय, जी०टी०रोड, गाज़ियाबाद में छपी*

# दो शब्द

श्री गुरुदेव परमसंत डाक्टर श्री कृष्णलाल जी , सिकंदराबाद (उ०प्र०) के प्रवचनों का चौथा भाग प्रेमियों की सेवा में प्रस्तुत कर रहा हूँ। श्री गुरु महाराज के प्रवचनों को इस भाग में संकलित करने में कोई त्रुटी रह गयी हो तो पाठक क्षमा करेंगे। आशा है प्रेमीजन इन्हें ध्यान पूर्वक पढ़ कर लाभान्वित होंगे इन के अतिरिक्त कुछ और प्रवचन भी प्रकाशन के लिए रह गये हैं जो कि संकलित किये जा रहे हैं और तुरंत प्रकाशित किये जायेंगे।

नई दिल्ली — दास

दि० १६-१-७१ — करतार सिंह

# विषय-सूचि


1. गुरु प्रेम और ईश्वर की राह में आत्म-समर्पण की भावना
2. दया और कृपा
3. काल का प्रभाव और उससे बचाव
4. साधन के दो पथ
5. शरीर की तरह आत्मा हो मी भोजन चाहिये
6. स्त्री-पुरुष
7. आजकल की रहनी सहती का जीवन पर प्रभाव ।
8. अन्तर की शुद्धि
9. गुरु-शिष्य
10. गंगा माता
11. इन्सानी जिन्दगी का आदर्श
12. परमार्थ दीनता से बनता हैं
13. सन्त सद्गुरु और शिष्य
14. गुरु सोच समझ कर धारण करना चाहिये।
15. फैज़- ईश्वर-कृपा ।
16. मनमानी मत करो
17. मन और माया से आत्मा को आज़ाद करो
18. अपने आप को पहिचानो
19. वैराग्य
20. कुछ विशेष भ्रमात्मक बाते तथा उनका निवारण
21. आत्मा की वापिसी
22. मन से सावधान रहो
23. मनुष्य का सर्वोच्च कर्तव्य क्या हैं ?
24. सच्चा प्रेम
25. विश्वव्यापी-प्रेम
26. सन्त करहि भवसागर पारा
27. पूजा में मन न लगने के कारण और उपाय

*एक प्रेम के नाते को छोड़कर मैं और किसी नाते को नहीं जानता। केवल प्रेम और वह भी निस्वार्थ प्रेम । जो लोग बिना अपने स्वार्थ के मुझे प्रेम करते हैं, चाहे वे सज्जन हैं या दुष्ट, मैं उन्हें प्रेम करता हूँ। वे मेरे हैं और मैं उनका । वे सदैव मुझ पर आश्रित रह सकते हैं और वे देखेंगे कि मैं सदैव उनकी सेवा के लिए प्रस्तुत हूँ ।*

---परमसंत **डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज**

सिकंदराबाद उ.प्र.

**( जन्म १९-१०-१८९४ - निर्वाण १८-०९-१९७०)**

समर्थ गुरु महात्मा रामचन्द्र जी महाराज (उर्फ़ लाला जी )

फतेहगढ़, उ० प्र० निवासी (जन्म १८७३ - निर्वाण १९३१ )

# गुरु प्रेम और ईश्वर की राह में आत्म-समर्पण की महानता

## (सिकन्द्राबाद) भंडारा

### दिनांक २०-१०-६६ प्रातः का सत्संग

"ॐ" श्री राम जय राम जय जय राम --इस समय थोड़ी देर के लिये आप सब इस मंत्र का उच्चारण कीजिये । 'ॐ' यानी आदि शक्ति जो सबका आधार है । 'श्री' यानी माता । 'राम' जो ब्रह्माण्ड का मालिक है और जो सब में रमा हुआ है। 'जय राम' इन सबों की स्तुति है । और 'जय जय राम' में आत्म-समर्पण है।

यह सृष्टि माता का पसारा है । विभिन्न रूपों में एक वही है जो खेल खेल रही है । उस माँ की मातहती में तीन शक्तियाँ यानी तीन देवता हैं जो तीन गुणों के मालिक हैं । ब्रह्मा, विष्णु और महेश । ब्रह्मा उत्पत्तिकर्ता, विष्णु पालनकर्ता और शिव संहारकर्त्ता । ब्रह्मा रज के, विष्णु सत के और शिव तम के रूपक हैं। सन्तों में देवताओं की पूजा नहीं करते । वे केवल उस एक आदि-शक्ति को पूजते हैं मगर माँ (सृष्टिमाता) की इज्ज़त करते हैं । जब तक माँ मदद नहीं करती जीव इस भवजाल से नहीं निकलता । इसलिये सन्तमत में हमेशा उसका सहारा लेकर चलते हैं । विरोध नहीं करते बल्कि Cooperate (सहयोग) करते हैं । जिस हाल में मां ने रखा है उसी में खुश रहते हैं। राज़ी-ब-रज़ा (यथा लाभ सन्तोष) रहते हैं।

माँ का दिल कोमल होता है । लेकिन जितना वह कोमल होता है उतना ही सख्त भी होता है । वह परीक्षा लेती है कि मेरा बेटा जो मेरे पति (ईश्वर) को पाना चाहता है उसमें कितनी मज़बूती है । नक़ल करने वाले और दिखावटी लोग उस इम्तहान में रह जाते हैं और जो लगे रहते हैं, माँ से मिल कर चलते हैं, मुक़ाबले पर नहीं आते बल्कि नम्रता से काम लेते हैं और आदि शक्ति अपने पिता की पूजा करते हैं, वे माँ के इम्तहान में पास होते हैं । और तब माँ खुश होकर उनके रास्ते की

रुकावटों को , दूर कर देती है, रास्ता साफ़ करके अपने पिता के पास जाने की इजाज़त दे देती हैं । वह मक़बूल (ईश्वर जिसे क़बूल कर ले) बन जाते हैं । इसलिये स्तुति करते रहो, नम्र बन कर माँ के साथ cooperate (सहयोग) करो और परमपिता परमेश्वर में अपने आपको समर्पित करते चलो धीरे धीरे रास्ता साफ़ हो जायगा ।

समर्पण के लिये वैराग और अनुराग से काम लेना चाहिये । अक्सर इसमें लोग ग़लती करते हैं कि दुनियाँ को छोड़ कर जंगल में चले जाते हैं और इसी को वैराग कहते हैं । धर्मशास्त्र के अनुसार रहनी-सहनी बनाना और ऐसे काम करना जो ईश्वर प्राप्ति में सहायक हों, और एक ईश्वर को ही प्यार करना 'अनुराग ' है। इसके विपरीत दुनियाँ के सामान और विषयों से इन्द्रियों को हटाना 'वैराग' है । यह अनुराग और वैराग आहिस्ता आहिस्ता होता है । दुनियाँ की चीज़ों से जब आप ऊँचे उठते हैं तो step by step (क्रम से) नीचे की चीज़ को छोड कर उससे ऊपर की चीज़ को पकड़ते हैं । नीचे की चीज़ को छोड़ना वैरांग और ऊपर की चीज़ को पकड़ना ही अनुराग है । इस तरह एक को छोड़ते और दूसरे को पकड़ते -पकड़ते आखिर में एक आधार-महज (ईश्वर) रह जाता है । जिस किसी कर्म से किसी को दुःख हो उसे छोड़ना और कोई अच्छा कर्म करना, जैसे दान देना, किसी की जान बचाना, ज़रूरतमन्द की मदद करना आदि, इनसे सुख होता है और ऐसा कर्म अनुराग की तरफ़ ले जाता है ।

सन्तमत में प्रेम मार्ग को लेते हैं और किसी ऐसे महापुरुष को, जिसने आत्मा का साक्षात्कार कर लिया हो, गुरु धारण करते हैं । इन स्थूल आँखों ने जिसे कभी देखा नहीं, बुद्धि जिसे समझती नहीं, जन्म-जन्मान्तर से जिसे स्थूल का ही ख्याल करने की आदत है, वह निर्गुण का ध्यान कैसे करे ? जब तक हम ईश्वर गति पर न पहुँचें उससे प्रीति कैसे करें? इसलिये पहले ऐसे महापुरुष से प्रेम करते हैं जो ईश्वर के दर्शन प्राप्त कर चुका हो और शरीरधारी हो । "गुरु" शब्द का अर्थ है जो

अन्धेरे से निकाल कर रोशनी में ले जाय । शरीर से वह साँसारिक व्यवहार करता है और आत्मा से वह ईश्वर में लय है । जिस्म से हम उससे बोल और बातचीत कर सकते हैं । इस तरह से उससे सत्संग करते हुए और उससे प्रेम करते हुए हम अन्धकार से रोशनी की तरफ़ चलते हैं ।

पहले पहल तो गुरु से प्रेम एक साथ नहीं होता, धीरे-धीरे बढ़ता है। जहाँ हम अपने माता पिता, भाई वग़ैरा रिश्तेदारों को प्यार करते हैं उतना ही शुरू में हम गुरु से करें । फिर जब धीरे-धीरे गुरु की महिमा को समझने लगते हैं प्रीति और प्रतीत होने लगती है तब आहिस्ता-आहिस्ता अपना विश्वास खुद ही बढ़ता जाता है । इसी को Consciousness (आत्म जागृति) कहते हैं । जैसे-जैसे यह बढ़ती जाती है, मन ज़्यादा शुद्ध (Refine) होने लगता है । तब और तरक्की होती जाती है । मन बुराई से हटने लगता है और भलाई पर आने लगता है । इस तरह वह धीरे-धीरे शुद्ध हो जाता है। असली दाता तो प्रेम के गुरु ही हैं, लेकिन शिष्य का जितना surrender (समर्पण) होता जाता है उतना ही अधिक प्रेम वह अपने अंदर अनुभव करने लगता है। इस तरह जब गुरु से प्रेम पूरी तरह बढ़ जाता है तो जिस निर्गुण को कभी नहीं देखा है उससे प्रेम होने लगता है और गुरु एक जरिया मालूम होने लगता है । फिर गुरु पुश्तेपनाही यानी पीछे से मदद देने वाला हो जाता है ।

एक बार का जिक्र है, कि मैं अपने गुरुदेव के साथ देहली की एक सराय में ठहरा हुआ था और रात को उनके नज़दीक सोया था । मैंने एक स्वप्न देखा कि एक नूर (प्रकाश) का दरिया (नदी) है जिसका कोई किनारा ही नहीं नज़र आता । मैं उसमें तैर रहा हूँ । कभी नूर के नीचे ग़ोता लगाता हूँ, कभी उसके ऊपर तैरने लगता हूँ । उसमें एक अजीब आनन्द व शान्ति का अनुभव हो रहा था । सवेरे उठने पर मैंने स्वप्न की हालत गुरुदेव से निवेदन कर दी । । उसी सवेरे सन्ध्या करते वक्त एक और अजीब हालत गुज़री । चारों तरफ़ नूर ही नूर यानी प्रेम का समुद्र लहलहा रहा था जो मुझको बड़ी तेज़ी से अपनी तरफ़ खींच रहा था और मैं उसमें समा जाने के लिये बेचैन

*था, प्रेम का आवेश था और एक अजीब आनन्द आ रहा था। तबियत यह चाहती थी कि शरीर टूट जाय और मेरी आत्मा इस प्रकाश में समा जाय । उसी वक्त यह भी ख्याल हुआ कि मेरा असली प्रीतम तो यही हैं । मैं तो गुरुदेव से झूठी मोंहब्बत करता हूँ । असलियत में प्रेम तो मुझे उस नूर से हैं और उसे हासिल करने के लिये मैंने गुरुदेव को एक ज़रिया बनाया हैं। आनन्द और सरूर की एक ऐसी हालत थी जो बयान में नहीं आती ।*

*गुरुदेव ने पूछा--क्या देख रहे हो ?*

*- मैंने अपनी हालत निवेदन कर दी ।*

*उन्होंने कहा- यही तुम्हारा असली प्रीतम हैं, इसमें अपने आपको पूरी तरह फ़ना (लय) कर दो । यह असल हैं और यही तुम्हारा इष्ट हैं । मैं तो मददगार और पुश्तेपनाही (पीछे रह कर सहायता करने वाला) हूँ ।*

*सबसे पहले स्थूल से स्थूल को यानी शिष्य को गुरु के बाहरी शरीर से प्रेम होता हैं और वह स्थूल सेवा पसन्द करता हैं, जैसे पाँव दबाना, नहलाना धुलाना, कपड़े साफ़ करना इत्यादि । इससे उसका मन शुद्ध होने लगता हैं और वह सूक्ष्म हालत पर आने लगता हैं, यानी गुरु से हमख्याल होने लगता हैं। गुरु जो ख्याल करते हैं शिष्य उसे क़बूल करने लगता हैं। यह मन का प्रेम हैं । यह प्रेम जब और बढ़ने लगता हैं तब गुरु और शिष्य एक जान दो क़ालिब हो जाते हैं यानी शरीर तो दो अलग दिखाई देते हैं लेकिन अन्दर से वे दोनों एक होते हैं । यहाँ शिष्य की बुद्धि गुरु में लय हो जाती हैं । यह बुद्धि का प्रेम हैं । इसके बाद शिष्य को कारण यानी ईश्वर से प्रेम होने लगता हैं । वह उसी को अपना सब कुछ मानता हैं लेकिन दुई बाक़ी रहती हैं। इसके बाद जब प्रेम और बढता हैं तो वह आत्मा का प्रेम कहलाता हैं। यही प्रेम की इन्तहा (पराकाष्ठा) हैं । वह सब चीज़ों में, चाहे वे जानदार हों या बेजान, अपनी ही आत्मा देखता हैं । सबको समान रूप से प्रेम करता हैं । यही वह*

हालत है जहाँ ईसा मसीह ने कहा था-- Love thy neighbour as thyself (अपने पड़ोसी को अपनी तरह प्रेम करो) thyself का मतलब उस अमर आत्मा से है जो तुम्हारे अन्दर है और जो सब में है । किसी की दुख तकलीफ़ हो, ऐसा मनुष्य सबके लिये रोता है। पहले इन्सान को दुख में देखकर दुःखी होता है। उसके बाद जानवरों, जीव-जन्तुओं और फिर वनस्पति को उसी तरह देखता है । अगर किसी दरख्त पर कुल्हाड़ा चल रहा है तो वह यह महसूस करता है जैसे उसी के जिस्म पर चल रहा हो । उसकी आत्मा universal soul (विश्वात्मा) में लय हो जाती है । सब में एक ही आत्मा, (अपने ही रूप) को देखता है । दुई मिट जाती है। जीवन-मुक्त हो जाता है । असली मोक्ष की दशा यही है । जब तक. यह हालत नसीब नहीं होती तब तक ideal (लक्ष्य) प्राप्त नहीं होता । यह बहुत मुश्किल है लेकिन गुरु कृपा का सहारा लेने और रास्ते पर चलते रहने से आहिस्ता-आहिस्ता यह हालत नसीब हो जाती है।

प्रेम और त्याग, शुरू में दो रास्ते हैं । सन्त मत में प्रेम के रास्ते को लेते हैं, अन्य मतों में त्याग को । असल में दोनों आगे चल कर एक ही हैं । प्रेम से त्याग खुद-ब-खुद हो जाता है, अगर आपको हम से प्यार है तो जो चीज हमें पसन्द नहीं है वह आप खुद ही छोड देंगे । प्रेम में आनन्द है और ज्यों-ज्यों प्रेम बढ़ता जाता है आनन्द भी उतना ही बढ़ता जाता है । जब ऊँचा आनन्द मिलता है तो नीचा आनन्द छुटता जाता है ।

एक और तरीक़ा है बुद्धि का, जिसे ज्ञान-मार्ग कहते हैं । पहले बुद्धि को शुद्ध करते हैं । जब बुद्धि सोच विचार करने लगती है, मनन करती है, यह विवेक की हालत है । Right thinking (सत् विचार) से जिन चीज़ों में उसे बुराई नज़र आती है उसे छोड़ती जाती है और जिन चीज़ों से ईश्वर-प्राप्ति में सहायता मिलती है उन्हें अच्छा जान कर ग्रहण करती जाती है । एक को त्यागना और दूसरी को पकड़ना, वैराग और अनुराग क्रमशः चलते रहते हैं । विवेक से वैराग्य और वैराग्य से

मुमुक्षता आती है । यह ख्याली चीज़ नहीं हैं । इसके लिये षट-सम्पत्ति के साधन की जरूरत है। (१) शम, (२) दम, (३) उपरति, (४) तितिक्षा, (५) श्रद्धा और (६) समाधान, यह छः षटसम्पत्तियाँ कहलाती हैं । यहाँ इनका विस्तार से बयान करने की ज़रूरत नहीं है । संक्षेप में 'शम' कहते हैं तस्कीने-क़ल्ब को यानी दिल का ठहराव हो जावे, इधर-उधर न बहके । ज़ब्तेहवास यानी इन्द्रिय-दमन को 'दम' कहते हैं। तीसरी सम्पत्ति उपरति का मतलब है उपराम या सेरी हो जाना, यानी मन की ऐसी हालत हो जाती है कि लोक और परलोक की कोई तमन्ना नहीं रहती । दुनियाँ की चीज़ों को भोग कर उनसे तृप्ति हो जाती है और उन्हें दिल लगाने के लायक न समझ कर छोड़ देते हैं । चौथी सम्पत्ति तितिक्षा यानी रोग-द्वेष  मान-अपमान द्वन्दों से ऊपर हो जाना है । सूफ़ियों में इसे तहम्मुल कहा है। श्रद्धा- गुरु में और शास्त्रों में विश्वास होना पाँचवीं सम्पत्ति है । छटी सम्पत्ति समाधान यानी यकसुई है । इसमें आनन्द और गैर-आनन्द की तरफ़ कोई दिलचस्पी बाक़ी नहीं रहती । राज़ी-ब-रजा  ( यथा लाभ सन्तोष ) की हालत हो जाती है।

लेकिन यह बुद्धि का मार्ग हरेक के लिए* नहीं है । इसमें Egoism (अहंकार) होने का डर रहता है जिससे गिरावट आती है । जो लोग बुद्धि के स्थान पर हैं वे शास्त्रों व गुरु की शिक्षा का आधार लेकर चलते हैं । वे गुरु का महत्व इतना .ही रखते हैं कि बुद्धि शुद्ध हो जाय । बाकी सब बातों में अपनी कोशिश का भरोसा रखते हैं । ऐसे लोग आम तौर पर सन्यासियों और वैरागियों में पाये जाते हैं । भक्ति और प्रेम-मार्ग पर चलने वालों को ज्ञानमार्ग के मुकाबले में सहुलियत ज़्यादा हैं और गिरावट का डर किसी क़दर कम । इसलिए पहले गुरु से प्यार करो फिर अपने आपको उसके समर्पण कर दो और फिर उसमें लय हो जाओ ।

# दया और कृपा

जो सब पर बराबर होती रहती है वह 'दया' कहलाती है लेकिन जो ईश्वर से प्रेम करते हैं और उसके रास्ते पर चलते हैं, उसकी कृपा है । जब मनुष्य इन्द्रियों के भोग, बुद्धि की चतुराई और मन के पर्दे से निकल कर ईश्वर की भक्ति में लग जाता है, उस पर कृपा होने लगती है, यानी ईश्वर खुद उसे अपनी तरफ़ खैंचता है । और फिर वह ईश्वर की राह में इतनी तेजी से चलता है जैसे पक्षी उड़ान कर रहा हो । इसी को सन्तों में विहंगम चाल कहा है । बन्दर का बच्चा अपने बल-बूते पर माँ के पेट से चिपटा रहता है इसी लिये वह कभी-कभी छूट कर गिर जाता है। मगर बिल्ली का बच्चा माँ के भरोसे रहता है यानी उसे बिल्ली अपने मुह में लटका कर उठाये फिरती है । इसीलिये वह गिरता नहीं है । जब तक हम साधक अवस्था में रहते हैं तब तक हमारी बन्दर के बच्चे की सी हालत है । और जब हम इन्द्रियों पर काबू पाकर, बुद्धि की चतुराई छोड़कर एक ईश्वर पर भरोसा करने लगते हैं, तब हमारी हालत बिल्ली के बच्चे की तरह हो जाती है। तब ईश्वर खुद हमारी संभाल करता है ।

जिसका जैसा संस्कार हों उसी के मुताबिक़ उस पर कुपा होती है । पिछले कई जन्मों से अगर कोई कमाई करता चला आ रहा है तो उस पर अधिक कृपा होती है । इसंलिये गुरु की तवज्जह अगर उसकी तरफ़ औरों के मुक़ाबले में ज्यादा हो तो यह कुदरती बात है । जिसका जितना पिछला संस्कार होता है उतनी ही उसकी कुरबानी और समर्पण भी औरों से ज्यादा होते हैं । समर्थ गुरु रामदास अपने शिष्यों में महाराज शिवाजी पर विशेष कृपा रखते थे क्योंकि वे जानते थे कि शिवाजी के बराबर दूसरा कोई ऐसा नहीं है जो कुरबानी कर सके । अपने और शिष्यों की तसल्ली के लिये उन्होंने एक रचना रची । उन्होंने तकलीफ़ से कराहना शुरू कर दिया । आवाज़

सुन कर शिवाजी दौड़े आये । हाथ जोड़ कर पूछा—"भगवन। , कौन सी तकलीफ़ है ? यह कैसे दूर हो ? सेवक हाजिर है । आज्ञा दीजिये ।"

गुरुदेव बोले-- शिवा, मुंझे बहुत तकलीफ़ है। यह एक ही दवा से दूर होगी और वह मिलना बहुत मुश्किल हैं ।

शिवाजी ने पूछा-- भगवन, बताइये वह' क्या चीज़ है, सेवक हर मुमकिन कोशिश उसके लाने की करेगा ।

गुरुदेव ने कहा-- यह तकलीफ़ शेरनी के ताज़े दूध पीने से ही दूर हो सकेगी ।

शिवाजी ने कहा-- भगवन,. सेवक शेरनी का ताज़ा दूध लेकर अभी हाज़िर होता है । सेवक को आपकी कृपा का भरोसा है कि दूध ज़रूर मिलेगा ।

यह कह कर शिवाजी फ़ौरन पहले राजमहल में गये और सोने का कंटोरा लिया क्योंकि दूसरे बर्तन में शेरनी का दूध ख़राब हो जांता हैं, और फिर जंगल को चल दिये जहां शेर रहते थे । बहुत सी गुफ़ाओं को देखने के बाद एंक गुफ़ा में शेर के बच्चे दिखाई दिये । उन्हें उम्मीद हो गई कि यहाँ शेरनी अपने बच्चों को दूध पिलाने जरुर आती होगी । वे निडर होकर गुफ़ा में कूद गये । शेरनी मौजूद न थी । वे शेरनी के बच्चों के साथ खेलने लगे । थोड़ी देर में शेरनी आई । शिवाजी को देखकर गुर्राने लगी । वे धीरे से उसके पास गये, निवेदल करने लगे --- "माँ, गुरुदेव के लिये दूध चाहिए ।" गुरुदेव में पक्का विश्वास, कुर्बानी और समर्पण से भरे हुए शिवाजी के निवेदन का, शेरनी पर असर हुआ और वह गाय की तरह चुप चाप खड़ी हो गई । शिवाजी ने दृध निकाला और शेरनी को प्रणाम करके गुरुदेव की सेवा में हाजिर हुए, दूध पेश किया ।

*कितनी जबरदस्त ख्याल की मजबूती है कि गुरुदेव के लिये दूध की जरूरत है इसीलिये शेरनी भी मना नहीं करेगी । ऐसे ही संस्कारी लोग होते हैं जो भक्ति का नमूता पेश करते हैं । यही गुरु-भक्त कहलाते हैं । वे एक ही जन्म में भवस्तागर पार कर जाते हैं । दुनियाँ की कोई चीज़ ऐसी नहीं जिसे वे ईश्वर की राह में कुर्बान न कर सकते हों ।*

*एक बार की बात है नारद मुनि को अपनी भक्ति पर कुछ गर्व हो गया । भगवान विष्णु समझ गये और नारद को चेताना चाहा । उन्होंने कहा—"नारद जी, मेरे दिल में बड़ा दर्द हैं । इसकी एक ही दवा है । अगर कोई सच्चा भक्त हो और वह अपने दिल का खून मेरे लिये दे सके तो यह दर्द दूर हों । " नारद मुनि सोचते रहे और कुछ देर बाद चल पड़े । "कौन ऐसा होगा जो अपने दिल का खून देगा ? इससे तो उसकी मौत हो जायगी। " ऐसा अविश्वास उनके मन- में उठा । कुछ दूर जाकर एक साधु के दर्शन हुए । उन्हें भक्त समझ कर नारद ने अपनी मुश्किल उनके सामने रखी । विष्णु भगवान के दिल में दर्द और उसके इलाज के लिये किसी भक्त के दिल का खून चाहिए, यह सुनते ही वह साथ बेचैन हो उठे । वे बोले -- "नारद जी, मेरा सारा दिल ही ले जाइये, न मालूम दिल के कौन से हिस्से का खून दरकार हो, धन्य है मेरे भाग्य जो मेरा दिल भगवान के काम आये ।" यह कह कर एक तेज़ औजार से उसने अपना दिल चाक करके नारद को दे दिया और बोला-- "भगवन, जल्दी जाइये, विष्णु भगवान का कष्ट अभी दूर होना चाहिए ।"*

*नारद जी विष्णु भगवान के सामने उस साधु का दिल लेकर आये । भगवान के दर्द तो था ही नहीं । उन्होंने नारद से कहा कि तुम भक्त होने का दावा तो करते हो लेकिन अपने इष्ट के लिये कुर्बानी नहीं कर सकते । तुम्हारे पास भी तो दिल था, कहीं और जाने की क्या ज़रूरत थी ? नारद जी सुनकर लज्जित हुए और उनका अहंकार चूर हो गया ।*

भक्तों की शान ही निराली होती हैं। वे तैय्यार बैठे रहते हैं और अपने प्रीतम के लिये किसी वक्त भी क़ुर्बान हो जाते हैं । यही मरने से पहले मरना हैं । जब सारी ख्वाहिशात खत्म हो जाती हैं, तभी इस हालत को पहुंचता हैं । मीराबाई कहती थी " सूली ऊपर सेज पिया की, केहि विधि मिलना होय"। सारी ख्वाहिशात को , मार देना ही सूली ऊपर चढ़ना हैं । जो सूली चढ जाता हैं वही पिया को पाता हैं । यह त्रिकुटी का मुक़ाम हैं जो दोनों भोंहों के बीच माथे में एक इन्च पीछे हैं । यहीं पर आत्मा का ठहराव हैं । इसी को 'शिवनेत्र' कहते हैं । यही शिवजी का धनुष हैं जो रामचन्द्र जी ने तोड़ा था और सीता को ब्याहा था । सीता शक्ति का रूप हैं । हजरत मौंहम्मद सफेद घोड़े पर चढ़कर चाँद को गये वह यही 'त्रिकुटी' या 'शिवनेत्र' का स्थान हैं । इसकी शकल गोल अर्ध चंद्राकार होती हैं। धनुष भी अर्ध चंद्राकार होता हैं । इस मुंक़ाम को पार किये बिना प्रीतम को कोई नहीं पा सकता । ईसा की सलीब यही मुकाम हैं । वे नमूता पेश करते हैं भक्ति का, कि प्रीतम पर किस तरह फ़िदा हुआ जाता हैं । जो मर जाता हैं वहीं असली ज़िन्दगी पाता हैं । बग़ैर ख़्वाहिशात खतम किये Kingdom of Heaven ( स्वर्ग का राज्य ) नहीं मिलता । Worldly life ( सांसारिक जीवन ) को ऐसा बदलो कि वह खुशी की ज़िन्दगी बन जाये और जब एक बार बह खुशी मिल गई तो हर हालत में खुशी ही खुशी होगी । अगर ऐसे भक्त -शिष्य न हो तो गुरु को पहचाने कौंन ?

# काल का प्रभाव और उससे बचाव

काल मन का मालिक है । ऐसा ख्याल मन में डालता है कि रास्ते से हटा देता है । विश्वास ढिलमिल होने लगता है । इससे बचाव की एक ही तरकीब है और वह हम सबों को याद रखनी चाहिये । जब ऐसा विघ्न आवे तो फौरन -गुरु के सामने आ जाये । और अगर अपनी अक्ल के चक्कर में पड़ गया तो गया । हमारे ऊपर भी कई बार ऐसी कैफ़ियत गुज़री । एक बार हमारे मन में बहुत गन्दे ख्याल आने लगे। हमने गुरुदेव को लिख कर दिया । उन्होंने कहा--"जाते रहेंगे।" लेकिन मन को धोखा हुआ । काल किसी किसी वक्त बड़ा ऊँचा धोखा देता है। हमने सोचा- "ऐसे गन्दे ख्यालात लेकर गुरु के सामने जाओगे ?"" और गुरुदेव के पास जाना बन्द कर दिया । कहाँ तो उनसे मिले बिना हमें चैन नहीं था, और अब उस रास्ते गुज़रना भी छोड दिया । कई महीने गुज़र गये । बहुतेरी कोशिश की पर गन्दे ख्यालात दूर न हुऐ । तबियत में यह था कि जब तक बुरी आदतें नहीं छूट जायेंगी गुरुदेव के सामने नहीं जायेंगे । नतीजा यह हुआ कि गुरुदेव से दूर हो गये । सत्संग और भण्डारों पर जाना बन्द कर दिया । दूर से गुजर जातें। बुद्धि के चक्कर में आ गये । एक दिन हमारे गुरु-भाई डाक्टर चतुर्भुज सहाय जी लालाजी (गुरुदेव) के दर्शनों को आए । उन्होंने मुझे न देख कर मेरे बारे में पूछा । लाला जी ने फ़रमाया--"वह मुझ से नाराज़ हैं इसलिए नहीं आता ।" डाक्टर साहब मेरे पास आए और मुझ से चलने के लिए कहा । पहले तो मैंने मना किया, फिर उनके अनुरोध करने पर चल दिया । दोनों लालाजी के घर पहुँचे । डाक्टर साहव अन्दर चले गये, लेकिन मैं बाहर ही रहा । लालांजी ने डाक्टर साहव से पूछा "श्रीकृष्ण नहीं आया ?" उन्होंने कहा कि आये तो हैं मगर अन्दर नहीं आते । लाला जी ने फ़रमाया—इस तरह नहीं आयेगा, उसे अपने आगे करके लाओ । डाक्टर साहव बाहर आये और मुझे अपने आगे करके अन्दर लें गये । लाला जी पलंग पर विराजमान थे । मुझे देखते ही फट-फूट कर रो पड़े बोले, "हमने क्या क़सूर किया है जो नाराज हो ?" और उस दिन के बाद से वे सारे गन्दे ख्यालात काफ़ूर हो गये । पर्दा

*खत्म हो गया । कहने का मतलब यह है कि जब भी मन पर काल का प्रभाव हो, ख्यालात ख़राब हों, हालत डिगमिग हो, गुरु के सामने जरूर जाता रहे । अगर ऐसा न हो सके तो ख़त में अपनी हालत लिख कर भेज दे । अपनी अक्ल पर भरोसा न करे वर्ना धोखा खायगा।*

*सन्त दयाल का रूप होते हैं । काल यानी शैतान दुनियाँ देता है और सन्त दुनियाँ से छुडाते हैं, जीव का उद्धार करते हैं । सन्तों की ऐसी महिमा है कि जब कोई सन्त दुनियाँ में प्रकट होते हैं तो हरेक जीव By nature (कुदरतन) एक दर्ज़े ऊपर उठ जाता है । जो सन्त गुफ़ाओं में पड रहते हैं क्या उनका प्रभाव दुनियाँ पर नहीं पड़ता ? उनका प्रभाव बराबर दुनियाँ पर पडता रहता है और जीवों का कल्याण होता रहता है ।*

*इस कलियुग में सत्पुरुष की मौज है इसलिये सन्तमत की तालीम आम है । क्या इससे पहले सन्त नहीं थे ? थे ज़रूर, मगर यह विद्या गुप्त थी । एक दो को बताई और अपने साथ ले गए । हरेक आदमी की पहुँच न उन तक थी और न हरेक को उनकी पहचान थी । इसलिए और वक्तों में जीव के उद्धार की सहुलियत इतनी नहीं थी जितनी कलियुग में है । पिछले युगों में इस बात पर ज़ोर देते थे कि पहले दुनियां छोड़ो तब परमार्थ कमाने चलो । यह हरेक के बस का नहीं था । इस युग में यह सहुलियत संतमत ने कर दी है कि दुनियाँ भी भोगो और परमार्थ का रास्ता भी चलते चलो । लेकिन याद रखो कि हरेक का इम्तहान ज़रूर होता है। बगैर इम्तहान पास किये किसी को कामयाबी का सेहरा नहीं मिलता । जो पढ़ता है, मेहनत करता है वही पास होता है । जो सन्तों के, गुरु के, बताये रास्ते पर चलेगा वही इम्तहान भी पास करेगा, और जो चलेगा नहीं वह पास, क्या होगा ? ईदवर आप सब को सच्चे रास्ते पर क़ायम रखे। ...*

# साधना के दो पथ

( द्वितीय दिवस भंडारा, सिकंदराबाद ता० २१-१०-१९६६ )

दो रास्ते हैं। एक मन का दूसरा बुद्धि का। मन के रास्ते पर चलने वाले साधक प्रेम को अपनाते हैं। अपने आचार्य से मौहब्बत करते हैं और जिस रास्ते पर वह चलता है, उस पर पूर्ण विश्वास ( blind faith ) के साथ चलते हैं। उसके वचनों पर बिना किसी शक या सन्देह के यक़ीन लाते हैं। मौहब्बत में क़ुर्बानी होती है, वहाँ अक़्ल का दख़ल नहीं होता।

दूसरे वे साधक हैं जो अपनी बुद्धि द्वारा रास्ते को ख़ूब समझ लेते हैं। किताबों को पढ़ कर, सतगुरु के वचन सुनकर उन पर ख़ूब विचार करते हैं और तब रास्ता अपनाते हैं।

दोनों में ख़ूबियाँ भी हैं और खराबियाँ भी। अगर साधक का प्रेम सच्चा है, और वह अपने गुरु का पूरा आशिक़ (प्रेमी) है और गुरु की मौजूदगी में रास्ता चलता है, तो रास्ता ज़ल्दी तय हो जावेगा। गुरु ने कहा और उसने मान लिया कि जो कहा गया सच है। उस पर अमल करने से उसे खूद तजुर्बा हो जाता है और आहिस्ता-आहिस्ता तजुर्बा करके वह उस हालत को पा जाता है। अगर साधक के प्रेम में कमी है तो तरक़्क़ी भी कम होती है, आरज़ी या temporary (अस्थायी) होती है। जैसे, अगर गुरु की कोई बात उसे अच्छी लगी, उसे क़बूल कर लिया और अगर किसी बात में बुराई दिखाई दी तो उसे दरगुज़र कर ( टाल ) दिया। लेकिन आगे चलकर जब वह ग़ौर से देखता है तो वह बुराइयाँ उसे अपने अन्दर ही नज़र आती हैं। जैसे-जैसे सफ़ाई होती चलती है, अपने में बुराइयाँ दिखाई देती जाती हैं क्योंकि हरेक को हम अपने मन से जाँचते हैं।

बुद्धि वाले सोच-समझकर तो चलते हैं और तरक़्क़ी भी करते हैं मगर एक झूँठा ख़्याल उनकी बुद्धि पर यह भी हो जाता है कि, "मैं कुछ जान गया। " अहंकार आ गया। आलिम (विद्वान) तो बना दिया लेकिन बाअमल नहीं बना (व्यवहार में नहीं लाया )। जैसा पढ़ा वैसा बन भी जाय तब

तो ठीक है। उसे झूँठा अभिमान हो जाता है कि मैं सब समझ गया। इससे बजाय तरक़्क़ी के गिरावट होती है।

यदि आप बार-बार एक बात पढ़ें या सुनें तो उस पर विश्वास हो जाता है। लेकिन यह मन का विश्वास है और चूँकि मन स्थिर नहीं हुआ है, इसलिए विश्वास भी स्थिर नहीं रह पाता। जब तक उस बात पर अमल नहीं किया जाय और उसका ख़ुद साक्षात्कार न हो जाय, विश्वास पुख़्ता नहीं होता। यही धोखा है।

मेरा तजुर्बा डाक्टरी का आहिस्ता-आहिस्ता हुआ। जब मैं डाक्टरी की थर्ड और फोर्थ ईयर में पढ़ता था तो सैंकड़ों नुख़्से लिखता था और कम्पाउण्डर उन्हें बनाते थे। साल भर बलरामपुर हॉस्पिटल में इसी तरह काम किया। लेकिन तजुर्बा ठीक से नहीं हुआ। जब अपनी प्रैक्टिस सिकन्दराबाद में खोली तो एक रईस को दवा देने का इत्तफ़ाक़ हुआ। दवा में Acqua Anisi (अकवा एनीसी) की जगह Oil Anisi (आयल अनीसी)। या 2 ड्राम डाल दिया और दवाई बनवा दी। जब उसकी खुशबू फैली तब ग़लती मालूम हुई और दवा बदलवाई। तो यह पढ़ने में और तजुर्बे में फ़र्क था। कुछ गलती करके सीखा और कुछ कम्पाऊण्डरों से सीखा, तब तजुर्बा हुआ। करने में और समझने में बड़ा फ़र्क होता है, मगर पढ़ने-लिखने का झूँठा अभिमान हो जाता है।

यों तो गुरु दया और कृपा के भण्डार हैं और उनकी कृपा सब पर होती है लेकिन जब कोई विशेष कृपा होती है तो शिष्य पर अपनी शक्ति से कोई न कोई हालत गुज़ार देते हैं। लेकिन यह हालत आरज़ी होती है, क़ायम नहीं रहती क्योंकि अभ्यास और इख़लाक़ की कमी होती है। जब धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ता जाता है और इख़लाक़ बनता जाता है, शिष्य एक न एक दिन गुरु कृपा से उस हालत को पहुँच जाता है। पहली हालत कश्फ़ (गुरु की खेंच शक्ति) की और दूसरी हालत कस्ब (शिष्य का निज अभ्यास ) की कहलाती है। इसी को अरूज (चढ़ाव ) और नज़ूल (उतार)

*कहते हैं। पहले चढ़ा, फिर गिरा और फिर चढ़कर वहाँ तक पहुँचा। पहली हालत की याद बराबर शिष्य की तरक़्क़ी में मदद करती है। जब गिरता है तब उसे याद आती है उस हालत की जो उस पर गुरु ने गुज़ारी थी और उसका आनन्द और सरूर उसे ऊपर उठने में मदद देता है।*

*एक बार फ़रुखाबाद में छोटे भाई की शादी में ट्रेन में सफ़र कर रहा था। उस वक़्त एक सैकिण्ड के लिये यह महसूस हुआ कि ईश्वर हर जगह मौजूद है। वह ऐसी हालत थी कि बयान में नहीं आ सकती। अगर वह हालत कुछ और देर रहती तो शरीर छूट जाता। इसी को हैरत का मुक़ाम या विराट रूप का दर्शन कहते हैं। इसमें बुद्धि इतनी खिंच जाती है कि अगर गुरु मदद पर न हों वह क़ायम नहीं रह सकती। जब भगवान कृष्ण ने अर्जुन को विराट रूप का दर्शन दिया तो पहले उन्होंने उसे दिव्य दृष्टि दी थी जिससे वह उस रूप के दर्शन कर सकें। मामूली हैसियत में अर्जुन विराट रूप के दर्शन नहीं कर सकता था। और जब दर्शन हुए तो वह ज़्यादा देर बर्दाश्त नहीं कर सका और उसने प्रार्थना की कि 'हे प्रभु। मुझे तो अपना वही रूप दिखलाइये।'*

*सन्तमत प्रेम का मार्ग है। अगर शिष्य को गुरु की सौहबत बराबर मिलती रहती है और उनकी सेवा में बराबर आता रहता है, तो जल्दी तरक्क़ी होती है। सबसे आसान यही रास्ता है, मगर शर्त यह है कि बराबर गुरु से सम्पर्क बनाये रखे।*

*मैं जब गुरुदेव की सेवा में गया तो मुझे मज़हब के नाम से चिढ़ थी मगर उनकी शकल मुझे अच्छी लगती थी। मेरे घर के लोग इस बात को पसन्द नहीं करते थे और मुझसे नाराज़ रहते थे। प्रेम करने का माद्दा मुझमें शुरू से ही था और मैं सबसे प्रेम करता था। मैं यह समझता ही नहीं था कि मैं क्यों प्रेम करता हूँ। प्रेम करने के माद्दे की वजह से बाज़े काम मैं ऐसे कर जाता था जो समाज के क़ायदों के ख़िलाफ़ होते थे, लेकिन मैं उसे समझ नहीं पाता था। साफ़ बयानी (स्पष्ट वादिता ) मेरे अन्दर थी। इसी वजह से सब मुझसे नाराज़ रहते थे। गुरुदेव ही एक पहले शख़्स*

मुझे ऐसे मिले जिन्होंने मुझे प्यार किया और वह प्यार हमेशा क़ायम रहा। उस प्यार की वजह से वह किसी से मेरे बुराई भी सुनने को तैयार नहीं थे।

एक बार की बात है कि एक रईस साहब उनकी सेवा में गये और ख़्वाहिश की कि उन्हें भी सत्संग में क़बूल कर लिया जाय। गुरुदेव ने उन्हें हिदायत दी कि मेरे साथ बैठकर पूजा कर लिया करें। कुछ दिनों बाद जब वे फिर गुरुदेव से मिले तो गुरुदेव ने पूछा कि क्या वे मेरे साथ बैठकर पूजा करते हैं ? उन्होंने जबाब में फ़रमाया कि वे जब भी मेरे साथ पूजा करने को आये तो मैं न मिला या मेरे कमरे का दरवाज़ा बन्द मिला। यह बात गुरुदेव को पसन्द नहीं आयी, और उन रईस साहब से फ़रमाया, "मैंने आपको Detective Inspector (ख़ुफ़िया दारोग़ा) बना कर तो नहीं भेजा जो आप मेरे पास शिकायत लेकर आये हैं। " गुरुदेव का मेरे लिये ऐसा प्यार था।

प्रेम के द्वारा ही उन्होंने मुझे रास्ता दिखाया. कभी न मैंने संध्या-पूजा के बारे में कुछ पूछा और न उन्होंने बताया। उनके पास बैठने को ही मैं सब कुछ समझता था। एक बार मुझे मालूम हुआ कि सत्संग में उपदेश भी दिया जाता है। मैंने निवेदन किया, "लालाजी, आप औरों को उपदेश देते हैं, शिष्य बनाते हैं, मुझे भी बना लीजिये। " उन्होंने फ़रमाया कि तुम मौलवी अब्दुल ग़नी साहब के पास जाओ और उनसे उपदेश लो। मैंने निवेदन किया कि आप शिष्य बनायेंगे तो उपदेश लूँगा, मैं और किसी के पास नहीं जाऊँगा। मैंने ज़िद की, ख़ैर, किसी तरह कृपा करके उन्होंने क़बूल कर लिया। एक मुसलमान सज्जन जिनका नाम अब्दुल सलाम था और जो लालाजी की सेवा में आया करते थे, मेरे दोस्त थे। आर्य समाजी ख़्याल का होने की वजह से मैं उनके साथ पान तक नहीं खाता था। जब उन्हें यह मालूम हुआ कि मैंने उपदेश ले लिया है तो वे बोले कि अब तुम मुसलमान हो गये हो, अपना नाम बदल दो। उन्होंने ऐसा इसलिए कहा कि इस वंश के पूर्वज इस्लाम धर्म के थे। मैं रोटी हाथ पर रखकर खाने लगा। घर के बर्तनों में न खाना खाता, न

पानी पीता। पानी चुल्लू से पी लेता था। मैंने यह सब बातें एक खत में लिखी कि मैं मुसलमान हो गया हूँ, कहिये तो नाम बदल लूँ।

अपने गुरुदेव से मैं कोई बात छिपाता नहीं था। अगर ज़बानी अर्ज़ नहीं कर सकता था तो लिख कर दे देता था। अगर इस दुनियाँ में मेरा कोई हमदर्द था या मेरा कोई परम हितेषी था तो वह एक ही पाक़ हस्ती (पवित्र व्यक्तित्व) थीं - गुरुदेव। दुनियाँ ने मुझे ठुकराया, जिसको भी मैंने प्यार किया उसी ने मुझे दुतकारा। अगर मेरे दुःख-दर्द को कोई सुनने वाला था तो वे थे गुरुदेव। उनमें बाक़ई पाक और सच्ची मौहब्बत थी। उनके पास बैठकर प्रेम लहलहाता मालूम होता था। अगर कोई मौहब्बत के लिये टूटने वाला दिल देखा, अगर दुःख-दर्द के लिये पिघलने वाला दिल देखा तो वह लालाजी (गुरुदेव) के पास देखा।

उन दिनों मैं पढ़ता था और बोर्डिंग हाउस में रहता था। मेरा ख़त पढ़कर लालाजी परेशान हो गये। बेचारे आधी रात को चलकर मेरे पास आये और बड़े प्रेम भरे शब्दों में फ़रमाया - " मैं इसी वजह से कहता था कि अभी उपदेश मत लो। तुम जान देने लगे, मैंने तुम्हें ले लिया। अब तो मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगा, तुम भले ही मुझे छोड़ दो। " मैंने निवेदन किया - "मैं नहीं जानता, मेरे लिये क्या ठीक है। आप जो ठीक समझें वह कीजिये। "

उन्होंने फ़रमाया - "तुम बच्चे हो, समझते नहीं, हम ठीक कर लेंगे। "

आहिस्ता-आहिस्ता उनकी कृपा से वह नफ़रत चली गयी। संत लोग धार्मिक कर्मकाण्ड के बन्धन से ऊँचे होते हैं। हिन्दू मुसलमान का भेद उनमें नहीं होता। जब अल्लाह का नाम गुरुदेव लेते थे तो हमें दिल में उनसे लड़ाई होने लगती थी। हम सोचते थे कि क्या कोई हिन्दू गुरु इन्हें नहीं मिला ? उनकी कृपा से सब नफ़रत दूर हो गयी।

आप देखेंगे कि जितने मुसलमान संत थे जिन्होंने हिन्दुओं से तालीम ली और आगे हिन्दू शिष्य बनाये। गुरु नानकदेव जी के शिष्यों में मुसलमान भी थे। राधास्वामी, कबीर साहब, गाँधी जी आदि सब संत ही तो थे जिन्होंने हिन्दू मुसलमानों की एकता की जीती-जागती मिसालें क़ायम कीं। मज़हबी दायरों में घिरे रहना ओछापन और बन्धन है। हमारा रास्ता प्यार का रास्ता है। गुरुदेव कहा करते थे कि, "मैं किसी बन्दिश (बन्धन) को नहीं मानता। मैं तो एक प्यार का रिश्ता जानता हूँ" वास्तव में वे महान थे।

बाज़े लोगों को यह एतराज़ है कि दूसरे मज़हबों की किताबें हमारे यहाँ क्यों पढ़ी जाती हैं या पढ़ने को बताई जाती हैं। हमारे लिए तो जो रास्ता हमारे गुरुदेव ने दिखाया वही सही है। उसी को हम ठीक मानते हैं। लालाजी के दिल में अपने गुरुदेव के लिए इतना प्रेम था कि वे उनके नाम से रोने लगते थे। हालाँकि उनके गुरुदेव मुसलमान थे लेकिन उनके सत्संग में महात्मा शिवव्रत लाल बर्मन की किताबें पढ़ी जाती थीं। वे स्वयं हिन्दू संतों की सौहबत में जाते थे।

लालाजी के महानिर्वाण के बाद मैंने ऐसा महसूस किया कि अपनी मुश्किलें किसके सामने रखूँ। शास्त्रों के जानने की ख़्वाहिश हुई लेकिन कोई बताने वाला नहीं मिला। एक साहब मिले भी, लेकिन उनका आचरण शुद्ध नहीं था। इत्तफ़ाक़ से एक संत लालाजी की तरह के मिल गये। उन्होंने शास्त्रों को पढ़ाया। मैंने यह देखा कि जो तालीम लालाजी की थी उसी को उन्होंने मुझे ऋषियों की भाषा में समझा दिया। मैंने देखा कि सब एक ही चीज़ है, फ़र्क सिर्फ़ शब्दों का है। मुसलमानों में जहाँ तक शरियत (इन्द्रियों की शुद्धि) है, उसमें फ़र्क है, तरीक़त में फ़र्क है, बुद्धि शुद्ध करने के तरीक़े में फ़र्क है, मगर जहाँ तक हक़ीक़त का सवाल है, वह एक ही है। हमने तो यह देखा कि इखलाक़ को बनाने ( character formation ) के लिए किसी एक तरीक़े को ले लो, चाहे वह वेद शास्त्र का हो या कोई और हो। जब हकीक़त पर आ जाओ तो औरों के तरीक़े को देखो।

आख़ीर सबका एक सा ही पाओगे। लाला जी के पास क्रिश्चियन (ईसाई) लोग भी धर्म ( religion) के मामले में सलाह लेने आते थे। उन्होंने लिखा है कि सब तरीक़े ठीक हैं मगर हमारा तरीक़ा माजूने-मुरक्किब (patent medicine ) है और सबसे आसान है।

मालिक ने जब से दुनियाँ पैदा की और जीव माया में बंधे, उससे निकलने का तरीक़ा भी बना दिया। यह तो हमेशा से है, कोई नया नहीं है। अगर यह कहें कि यह तरीक़ा अब आया है, ऐसा नहीं है। ब्रह्मविद्या गुप्त थी, आम नहीं। अब आम हो गयी है। भिन्न-भिन्न मतों की तालीम के लफ्ज़ों (शब्दों ) में फ़र्क़ हो सकता है, मगर भाव ( sense) एक ही है। किसी मज़हब के नाम या या उसके साहित्य (literature ) में इस्तेमाल किये गये शब्दों के झगड़ों में मत पड़ो। यह नीचे की चीज़ें हैं। भाव (sense ) पर जाना चाहिये। किसी मज़हब में अगर यह कहा जाता है कि मूर्ति-पूजक काफ़िर है तो यह तंगदिली (छोटापन) है। अगर कोई पत्थर को, पेड़ों को या और किसी चीज़ को पूजता है और यह समझता है कि इसमें ईश्वर है, तो उसकी उपासना सच्ची है। हाँ, अगर उस चीज़ को ईश्वर समझ कर ऐसा करता है तो वह काफिर है।

मज़हब का ख़्याल छोड़ दो. हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, वग़ैराके झगड़े में मत पड़ो। ये सब रास्ते की बाधाएँ हैं। हमारा प्रीतम तो ईश्वर है। उस तक पहुँचने के लिये हमें रास्ते में कुछ भी करना पड़े, हमें मन्जूर है। जो हमारे पूर्वज है, जिनकी कृपा से हम रास्ते पर चल रहे हैं, चाहे वह किसी भी मज़हब के थे, हमारे लिये पूज्य हैं। जब तक मन सत -वृत्ति पर न आ जाये, और आत्मा के स्थान पर न पहुँच जाये, तब तक पाबन्दी में रहना चाहिये और समाज और कर्मकाण्डों के नियमों का पालन करना चाहिये। जब बुराई छोड़कर अच्छाई पर आ गये, सत पर आ गये और मन पर क़ाबू आ गया, तब अगर कोई चीज़ रास्ते में आती है तो उसकी परवाह मत करो।

हमें अपने गुरुदेव से मोंहब्बत थी। उनके सत्संग में जाते थे। हमारे पिता जी को यह बात पसन्द नहीं थी। वे नाराज़ होते थे। हमने अपने दिल में ठान लिया था कि चाहे कुछ भी हो, हम लालाजी को नहीं छोड़ेंगे। 15 वर्ष की उम्र में हमें पिता ने छोड़ दिया। बड़ी भारी हवेली के वे मालिक थे। मुझे उसमें से हिस्सा नहीं मिले, उसे भी उन्होंने बेच दिया। पढ़ने की फ़ीस देनी भी बन्द कर दी। जब मेडिकल में पढ़ने गये तब तक शादी हो चुकी थी। हमें सिर्फ़ दस रूपये महीने मिलते थे ,जिसमें फ़ीस, किताबें, खाना वग़ैरा शामिल था। घरवाली को एक पैसा खर्च के लिये नहीं दे सकते थे। यह सब मुसीबतें आयीं लेकिन हमने लालाजी को नहीं छोड़ा। कहने का मतलब यह है कि परमार्थ के मामले में किसी की परवाह मत करो। इस दुनियाँ में अभी तक हमें कौन सा सुख मिला है जो आगे देगी। जब जाने का वक़्त आयेगा तो क्या सुख से जाओगे ? इसलिए इस ज़िन्दगी में इसे मन से छोड़ दो।

सब की सेवा ईश्वर का रूप जानकर करो। यह दुनियाँ उसका विराट रूप है। बिना किसी भेदभाव (distinction ) के सब की सेवा अपना फ़र्ज़ समझ कर करो। अगर कोई बुराई करता हो तो सोचो कि यह बुराई करता है तो भी मेरे लिये अच्छाई है। क्या ईश्वर की मर्ज़ी के बिना पत्ता भी हिलता है ? कितनी मेहरबानी है उस ईश्वर की, उसकी बुराई से तुम्हारा संस्कार कट गया और बुराई दूसरे को मिल गयी। निगाह (दृष्टिकोण ) बदल लो। जो चीज़ें तुम्हें बन्धन में डाल रही हैं, उन्हें छोड़ दो। एक दिन ऐसा आयेगा कि तुम सब कुछ छोड़कर उसके बन जाओगे और वह तुम्हें अपनायेगा। उस वक़्त तुम Dearest son of God (ईश्वर के सबसे प्यारे बेटे) हो जाओगे। तमाम दुनियाँ की शक्तियाँ तुम्हारे आगे हाथ बाँधे खड़ी रहेंगे। मरते वक़्त आज़ादी से जाओगे। महापुरुषों की पवित्र रूहें तुम्हें लेने आवेंगी। हँसते हुए जाओगे। ईश्वर सबका भला करें।

# शरीर की तरह आत्मा को भी भोजन चाहिये

स्थान, सिकन्द्राबाद उ० प्र०

(प्रवचन गुरुदेव -शनिवार सायं ता० १२-१ १-६६)

दीपावली की पूर्व सन्ध्या पर पढ़ने वालो कन्याओ को सम्बोधित करते हुए ।

तीन शरीर हैं । एक शरीर हमारा बाहरी जिस्म है, दूसरा मन का शरीर है और तीसरा आत्मा का। बाहरी जिस्म स्थूल शरीर कहलाता है, मन का जिस्म सूक्ष्म शरीर और आत्मा का जिस्म कारण शरीर कहलाता है । स्थूल शरीर पाँच तत्त्वों या Elements से बना है जिसमें मिट्टी, पानी, हवा, आग और ईथर (आकाश) मिले हुए हैं । मरने के वाद यह सब अलग-अलग हो जाते हैं । मिट्टी तो मिट्टी में मिल जाती है और अग्नि, वायु, जल और ईथर अलग-अलग होकर अपनी-अपनी जगह विलीन हो जाते हैं ।

सूक्ष्म शरीर में चार चीज़ें शामिल हैं । मन, चित्त, बुद्धि और अहंकार । मन में ख्वाहिशात पैदा होती हैं, चित्त उन पर मनन करता है, बुद्धि निर्णय करती है और अहंकार यानी खुदी उस ख्वाहिश को Practical shape (व्यवहारिक रूप) देती है । आत्मा का शरीर इन दोनों से न्यारा है। उसका कोई विभाजन नहीं है । वह ईश्वरीय है। न कभी पैदा होता है, न मरता है । लेकिन स्थूल और सूक्ष्म शरीर को हरकत देने वाली शक्ति आत्मा ही है। आत्मा की गैर-मौजूदगी (अनुपस्थिति) में स्थूल शरीर निर्जीव हो जाता है यानि मर जाता है | पहले बच्चे का स्थूल शरीर बनता है, फिर मन का शरीर बनता है और जब पैदा होता है तब आत्मा उसमें आती है ।

तीनों तरह के जिस्मों की गिज़ायें (भोजन) भी अलग-अलग हैं । स्थूल शरीर की गिजा भी स्थूल है । अन्न, पानी, गर्मी और हवा से यह पलता है । इनमें से अगर एक भी चीज ने मिले तो यह क़ायम नहीं रहता । अगर खाना न मिले तो कुछ दिनों जिन्दा रहेगा लेकिन बाद में भूख से मर

जायगा । पानी पी कर भी कुछ ही दिनों जिन्दा रहेगा । हवा के बिना कुछ मिनटों में ही मर जायगा । अगर गरमी या हरारत न हो तो भी जिस्म ठंडा पड़ कर मौत हो जायगी । इसलिए जिस्म खाक़ी यानी स्थूल शरीर को क़ायम रखने के लिये उसे बराबर खुराक मिलती रहनी चाहिये। अगर अच्छी खुराक़ और अच्छी आबोहवा (जलवायु) मिलेगी तो तन्दुरुस्ती अच्छी रहेगी । तन्दुरुस्ती अच्छी रहने से दुनियाँ का काम काज अच्छी तरह से कर सकेगा । कमजोर और बीमार जिस्म (शरीर) क्या अपने लिये करेगा और क्या दूसरों के लिये ?

जिस तरह अच्छी खुराक के बिना स्थूल शरीर बीमार और कमजोर हो जाता है उसी तरह मन के शरीर को तन्दुरुस्त रखने के लिये अच्छे विचार ज़रूरी हैं । अच्छे विचार अच्छे आदमियों की सौहबत से मिलते हैं । बुरी सौहबत से बुरे विचार उठते हैं मन मलीन होता है, चित्त कुण्ठित हो जाता है, ठीक से मनन नहीं कर पाता और बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है । उचित अनुचित कुछ नहीं सूझता और इन्सान की गिरावट होती जाती है । आगे की तरक्की नहीं होती । दुनियांदारों की सौहबत दुनियाँ तक ही सीमित रखती है मगर सन्तों और महापुरुषों की सौहवत से मन शुद्ध होता है, चित्त एकाग्र होने लगता है । जो मनन करता है वह One pointed attention (एकाग्रता) से करता है, बुद्धि विकसित होने लगती है और इन्सान आगे की तरफ़ बढ़ने लगता है । Will power यानी इच्छाशक्ति या मनोबल मज़बूत होने लगते हैं । जिस काम को करता है लगन के साथ करता है और अपनी मजबूत इच्छा शक्ति से उसमें कामयाबी हासिल करता है । पढ़ने में जो लोग अच्छे नम्बर लाते हैं, प्रथम आते हैं, उन की कामयाबी का यही भेद है। बिना खुदी के, बिना इच्छा शकित के, दुनियाँ में कामयाबी हासिल करना नामुमकिन है ।

लड़कियाँ बचपन में गुड़ियों से खेलती हैं। उन्हें उसमें बड़ा आनन्द आता है। लेकिन जो उसी आनन्द में लगी रहीं, पढ़ने लिखने में ध्यान न दिया, वे वहीं तक तरक़्क़ी कर पाती हैं, ज्यादातर

गँवार रह जाती हैं। जो पढ़ती लिखती हैं, वे उनसे ज़्यादा तरक़्क़ी करती हैं, अच्छी ग्रहस्थिनें ( गृहणियाँ) बनती हैं, खुद भी खुश रहती हैं और दूसरों को भी अपने व्यवहार से खुश , रखती हैं । जो पढ़ने लिखने में ज़्यादा उन्नति करती हैं वे और ज़्यादा खुशी हासिल करती हैं । अगर तुम एम०ऐ० या पी०एच०डी० करना चाहती हो तो मेहनत करो और अपनी इच्छा शक्ति को मजबूत बनाओ । ईश्वर पर भरोसा रखो ।

जितनी भी दुनियाँवी खुशियाँ और आनन्द हैं वे सब के सब किसी दूसरी चीज पर dependent (आधारित हैं) और मन की ख्वाहिशात को लिये हुए हैं। अगर कोई मनचाही चीज हासिल हो जाती है तो बड़ी खुशी होती है । और अगर नहीं मिलती या कोई ऐसी चीज जिससे तुम्हें खुशी मिलती हो, तुमसे दूर हा जाती है, तो दुःख होता है। किसी चीज़ में भी हमेशा क़ायम रहने वाली खुशी हासिल नहीं होती बयोंकि एक तो वे चीजें जिन पर वह खुशी dependent (आधारित) हैं, खुद हमेशा रहने वाली नहीं हैं । दूसरे, मन की हमेशा एक सी स्थिति नहीं रहती । जिस चीज़ से एक क्षण उसे खुशी मिलती है, उसी चीज़ से दूसरे क्षण उससे नफ़रत हो जाती है, दुख होने लगता है । मिठाई खाने में बड़ी अच्छी लगती है । जब बीमार हो जाते हैं तो वही भिठाई जहर मालूम होने लगती है। लड़का पैदा हुआ, वड़ी खुशी हुई । पागल हो गया या मर गया, बड़ा दुख हुआ ।

असली आनन्द आत्मा में है । जिस बाहरी चीज़ पर उसका अक्स पड़ता है मन और इन्द्रियाँ उसी में आनन्द लेने लगते हैं । लेकिन आत्मा पर जन्म-जन्मान्तर से भले बुरे संस्कारों के गिलाफ़ चढ़े हुए हैं, वह दवी हुई है । उसे उभारो । इसके लिये आत्मा को गिजा की ज़रूरत है। आत्मा पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द और पूर्ण सत्य है । धार्मिक पुस्तकों के पढ़ने से, सन्तों के सत्संग से और उनके उपदेशों पर चलने से आत्मा को ज्ञान प्राप्त होता है। सच बोलने, अच्छे काम करने, अच्छे विचार रखने मे आत्मा को गिजा मिलती है । दान करना, दया करना, किसी का दिल न दुखाना, इन सब

*बातों से आत्मा को बल मिलता है । आत्मज्ञान की प्राप्ति ही ईश्वर की प्राप्ति है । वही इन्सान की ज़िन्दगी का Goal (लक्ष्य) है । इसलिए जब तक उसकी प्राप्ति न हो, बराबर आगे बढ़ती रहो । ईश्वर तुम्हारे अन्दर है । उसे प्रेम से बुलाओ । वह ज़रूर आयेगा ।*

# स्त्री-पुरुष

प्रकृति ने अपने आपको दो रूपों में प्रदर्शित किया है। स्त्री रूप में और पुरुष रूप में । दोनों के गुणों में अंतर है । स्त्री में सहनशीलता तथा प्रेम है परन्तु ज्ञान की कमी है । पुरुष में बल, अहम् है, विचार तथा ज्ञान है । स्त्री में इन्द्रियों को वश में करने की इतनी शक्ति नहीं है जितनी पुरुष में, परन्तु इतिहास में तथा अपने तजुर्बे से यह देखने में आया है कि कई स्त्रियाँ पुरुषों से भी अधिक ज्ञानवान होती हैं । हमारा भाव यह नहीं है कि सब स्त्रियाँ अज्ञानी होती हैं परन्तु अधिकतर स्त्रियों में ज्ञान की कमी होती है। इस विषय में शंकराचार्य लिखते हैं कि जिसमें ज्ञान है, चाहे वह स्त्री ही क्यों न हो, पुरुष कहलाएगी तथा पुरुष है और उस में ज्ञान नहीं है तो वह स्त्री कहलाएगा । गुणों के आधार पर उन्होंने मनुष्यों को स्त्री-पुरुष में बांटा है ।

स्त्री मन का रूप है, इसलिए कबीर साहब तथा अन्य महा-पुरुषों ने कहा है कि स्त्री को वश में रखना चाहिए । पुरुषों का एक अपना मन होता है और दूसरा- अपनी स्त्री का । उसको दो मनों को वश में करना होता है । हर पुरुष में १८ चक्र होते हैं । परन्तु ईश्वर की ऐसी मौज है कि स्त्री में १२ चक्र होते हैं । इसलिए स्त्री में प्रेम तो होता है परन्तु ज्ञान की कमी होने के कारण वह ईश्वर स्वरूप कम ही बनती है, भक्ति में वह पुरुषों से आगे रहती है । स्त्री रूप के पश्चात् उसको पुरुष रूप मिलता है । पुरुष रूप में वह प्रयत्न करके जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त होती है ।

पढ़ने से यह पाया जाता है कि अधिकतर महापुरुषों ने अपने आपको स्त्री कहा है । गुरु नानक साहब ने तो सदैव अपने आपको "स्त्री तथा अपने पुरुष की चेरी (सेविका)" कहा है। परमहंस स्वामी रामकृष्ण जी ने सखी रूप धारण करके साधना की । वह अपनी साधनावस्था में ऐसे बन जाते थे कि कोई भी उनको पहचान नहीं सकता था कि वे स्त्री हैं या पुरुष । यहाँ तक कि

मथुरबाबू जो सदैव उनके समीप रहते थे, परमहंस जी को (जब वे स्त्री रूप में श्रृंगार करते थे) नहीं पहचान पाते थे । स्वामी जी ने ईश्वर को स्त्री (माँ) रूप में पूजा।

मीरा जी जब वृन्दावन में आईं तो एक महापुरुष के दर्शन करने के लिये गईं । वह स्त्रियों को दर्शन नहीं दिया करते थे। द्वारपाल को दर्शन के लिये कहलवा भेजा किन्तु महापुरुष ने बाहर आना स्वीकार नहीं किया । मीरा जी चकित हुईं और उन्होंने द्वारपाल से कहा-- "मैं समझती थी कि संसार में सब स्त्रियाँ हैं, पुरुष तो एक भगवान ही हैं, यह दूसरे पुरुष कहाँ से आये ?" यह कह कर वहाँ से चल दीं । महापुरुष को जब इस बात का पता चला तो उन्होंने अनुभव किया कि वह उनकी भूल थी, वास्तव में पुरुष तो एक भगवान ही हैं । वह मीरा के पीछे-पीछे दौड़े परन्तु वे जा चुकी थीं ।

परमार्थी में स्त्री और पुरुष के दोनों गुण होने चाहिये तभी उसमे पूर्णता आयेगी, भक्ति भी और ज्ञान भी । जहाँ दोनों का संतुलन होगा, वही पूर्णता होगी । संतुलन का भाव है कि अपनी इन्द्रियों, वृत्तियों और दूसरी शक्तियों पर पूर्ण अधिकार होना चाहिए । ईश्वर में सदैव लय अवस्था में रहना चाहिए और यह अवस्था निरंतर एक रस होनी चाहिए । जो मनुष्य इस अवस्था को प्राप्त करता है उसी का नाम पुरुष है।

---

## आजकल की रहनी सहनी का जीवन पर प्रभाव ।

(दिल्ली २१-२-६७)

आम लोगों ने परमार्थ को एक बहुत बड़ा काम समझ रंखा है और ख्याल करते हैं कि इसके हासिल करने में हमें दुनियाँ की हरेक चीज़ का त्याग करना होगा और शुरू करना तो दर-किनार (अलग)

*उसका नाम सुनने से भी घबराते हैं । वजह इसकी यह है कि हमारी रहनी-सहनी और व्यवहार इतना गिर गया है कि हम सीधे रास्ते पर चलना गैर-जरूरी ही नहीं बल्कि नामुमकिन (असम्भव) समझ बैठे हैं । अगर किसी मुलाज़िम पेशा (कमंचारी) से कहो कि अपने काम को सच्चाई और दीनदारी से करो तो वह यही कहता है कि नौकरी करते हुए सच्चाई पर चलना नामुमकिन है । अगर किसी तिजारत पेशा से कहो तो वह भी यही जवाव देता है । मुश्किल से सैंकड़ों में से कोई एक ऐसा आदमी होगा जो उसको सही मानने के लिये तेयार हो और इस पर अमल करने वाला तो हज़ारों में से कोई एक होगा । हम अपनी बुरी आदतों यानी झूठ, मकक्कारी, धोखा, गुस्सा, दिखावा वग़ैरा में इतने फंस गये हैं कि उनको. छोड़ना हमारे लिये बहुत मुश्किल हो गया है ।*

*दूसरी यह बात है कि बदक़िस्मती (दुर्भाग्य) से वह संत लोग जिनके आचरण उच्च कोटि के थे, जिनंके हृदय में ईश्वर प्रेम का अथाह समुद्र लहराता था और जो जनता के लिये मिसाल थे, वह भी इन्हीं बुरी आदतों के शिकार हो गये । जाहिरदारी कोई अपने आपको कुछ ही कहा करे लेकिन जो रहनी-सहंनी उन बनावटी सन्तों की है वह रोजमर्रा के तजुर्वे से ज़ाहिर है । उसके बयान की ज़रूरत नहीं ।*

*इसमें शक नहीं कि हिन्दुस्तान हमेशा से ब्रह्मविद्या का एक केन्द्र रहा है और इस गिरे हुए जमाने में भी कहीं-कहीं कभी-कभी असली सन्तों के दर्शन हो जाते हैं लेकिन इखलाक़ी (व्यवहारिक चाल चलन) हालत से हिन्दुस्तान जिस हालत पर चल रहा है वह किसी से छिपी नहीं है। अगर कोई शख्स आहिस्ता-आहिस्ता अपनी आदतों को ठीक कर ले यानी इन्द्रिय, मन, बुद्धि को क़ाबू में लाकर सम अवस्था में ले आये और अपनी जिन्दगी को सच्चाई के साँचे में ढाल दे और सन्तों की तलाश करता रहे तो जरूर उसको ईश्वर की तरफ़ से मदद मिलती है और कोई सन्त, ईश्वर का प्रेमी मिल जाता है ।*

*इन दोनों चीजों का सहारा लेकर, चाहे वह किसी पेशे और किसी काम को करं रहा हो, उसका परमार्थ आहिस्ता-आहिस्ता बनता चलेगा । दुनियाँ में उसको दुनियाँवी चीज़ें अपनी तरफ़ खेंचेंगी लेकिन जो चीज़ें ईश्वर के प्रेम में रुकावट डालें उनको हटाता हुआ और जो चीज़ें सहायक हों उनको साथ लेता हुआ आगे बढ़ता चले । एक दिन वह मुबारिक दिन आवेगा कि वह यह अनुभव करेगा कि सब रुकावट और सहायक चीज़ें दरअसल उसके रास्ते में बांधक नहीं बल्कि संहायक थीं । यह अपनी बुद्धि की वजह से किसी को सहायक और किसी को रुकावट मान बैठता था । अब हर जगह और हर चीज़, में वह अपने परमपिता के दर्शन करेगा और हमेशा हमेशा का सुख और शांति की जिंदगी हासिल कर लेगा । अब चाहे वह किसी पेशे में हो, किसी मुलाजिमत में हो, किसी अवस्था में हो, सच्चाई और प्रेम उसका ईमान होगा और हमेशा की शांति और जिंदगी उसका लक्ष्य होगा। यही सच्चा और सीधा रास्ता है। बगैर इसके किसी को शांति और सुख नहीं मिल सकता।*

# अन्तर की शुद्धि

परमार्थ का भाव है कि मन को जितना भी हो सके उतना माँझना चाहिये । तामसिक तथा राजसिक वृत्ति का त्याग करके सतवृत्ति को अपनाना चाहिये । सतवृत्ति के साथ अन्तर में ' कोमलता तथा सरलता आनी चाहिये । सत्य बोला जाय परच्तु उसके साथ कड़वी वाणी न हो, उसमें मिठास होनी चाहिये तथा अपनी वाणी से किसी का दिल नहीं दुखाना चाहिये। मनुष्य में दूसरे का दुःख देख कर अपने अन्तर में दुःख उत्पन्त हो ओर यह भावना आये कि किसी तरह उस दुखी मनुष्य को उसके दुख से निवृत्ति पहुँचाई जाय । किसी को खुश देख कर मन में ईर्ष्या न आये परन्तु मनुष्य स्वयँ हर्षित हो । सबकी भलाई में मनुष्य अपनी भलाई समझे । साथ ही साथ उसकी बुद्धि निरन्तर ईश्वर का चिन्तन करती रहे । जब ऐसी अवस्था परिपक्व हो जाती है तब परमार्थी तीव्रता से ईश्वर की ओर बढ़ता है और कुछ समय में ही वह आत्मा का साक्षात्कार कर लेता है। जितनी अन्तर में पवित्रता, शान्ति तथा विचार-रहित अवस्था आती जायगी, उतना ही मनुष्य आत्मा के समीप आता जायगा ।

मनुष्य के अन्तर में बुराइयाँ तथा त्रुटियाँ भरी हुई हैं । कितना ही मन को साफ़ किया जाय अन्तर की स्वच्छता प्राप्त नहीं होती । कौए को कितना ही साबुन से धोया जाय उसके रंग में परिवर्तन नहीं आता । यही हाल मन का हैं । उसको जितना माँझा जाय उतना ही कम है परन्तु बिना मन के माँझे  मनुष्य सुख और शांति का अनुभव नहीं कर सकता है ।

यह पथ कठिन है । मनुष्य को चाहिये कि वह अन्तर में निरन्तर टटोलता रहे कि उसमें कोई कमी तो नहीं हैं । यदि कोई दीखे तों वह उसको दूर करने का प्रयास करता रहे ।

*अपने अन्तर में अपनी बुराइयों तथा त्रुटियों का अनुभव करना "ज्ञान" कहलाता है । उनको दूर करना "तप" कहलाता हैं ।*

*हर परमार्थी को स्वाध्याय करना चाहिये । अपने अन्तर में कोई कमजोरी देखें, उसको दृढ़ता से त्यागने का प्रयत्न करना चाहिये, जैसे अधिक बोलना, अधिक खाना, दूसरों की बातों में हस्तक्षेप करना, आदि । ये ऐसी बातें हैं यदि मनुष्य चाहे तो कुछ समय के प्रयास से इनसे मुक्त हो सकता है । इसके पश्चात जो और कठिन त्रुटियाँ हैं जैसे काम, क्रोध, अहंकार आदि इनको धीरे धीरे छोड़ने का प्रयन्त करना चाहिये । यदि आरम्भ में ही कठिन त्रूटियों से मुक्त होने का प्रयास किया जायगा तो परमार्थी को निराशा होगी, क्योंकि काम, क्रोध, अहंकार आदि ऐसी बातें हैं, जिनसे मुक्त होने के लिये काफ़ी समय तक दुंढ़ प्रयास की ग्रावश्यकता है । इसलिये आरम्भ में उस त्रुटि से मुक्त होने के लिये प्रयास करना चाहिये जो सरलता से छूट जाय । ऐसा करने से मनुष्य को उत्साह मिलेगा, दृढ़ता आयेगी तथा उसमें कठिन बुराइयों से मुक्त होने के लिये साहस बढ़ेगा ।*

*जो मनुष्य नियमानुसार अपना जीवन व्यतीत करते हैं उनको सरकार का किसी तरह का भय नहीं होता । इसी प्रकार यदि मनुष्य धर्मानुसार चले तो उसका मन शान्त रहेगा । परमार्थी को इससे और आगे चलना है । यदि वह प्रकृति के नियमों के अनुसार चलेगा तो आत्मा के समीप आ जायगा ।*

*हमें दूसरों की तुटियाँ क्यों दीखती हैं ? क्योंकि हमारे स्वयं के अन्तर में त्रुटियाँ होती हैं, तभी दूसरों के अ्वगुण दीखते हैं । यदि अपना मन स्वच्छ, सात्विक और कामनाओं वासनाओं से मुक्त हो, तव दूसरों के अवगुण कम ही दीख पायेंगे । यदि किसी में त्रुटि दीखती है और वह वास्तव में ठीक है तो ईइवर से प्रार्थना करनी चाहिए कि हे प्रभु ! उस मनुष्य को इन त्रुटियों से मुक्त करो ।*

*इसके अतिरिक्त ऐसी त्रुटियों से लाभ उठाना चाहिए कि हम स्वयं उनमें ग्रस्त न हो जायें। अरस्तु सिकन्दर के गुरु थे । वह वृद्ध अवस्था में एक युवा कन्या के जंजाल में फंस गये,. ऊपर से सिकन्दर भी आ गये और हँसने लगे। गुरुदेव ने उनसे कहां, बेटे, तुम्हें हंसना नहीं चाहिए, मेरी अवस्था इस समय ८० वर्ष से भी ऊपर है और मेरी यह हालत है। यह अत तुम्हें चेतावनी दे रही है कि तुम तो युवक हो, तुम्हें क्या करना चाहिए । सिकन्दर को होश आया और वह अपने गुरु के कथनानुसार ईरान से भारत-वर्ष के लिए विदा हों गया। इससे पूर्व वह भी इस कन्या के प्रेम में फँसा हुआ था तथा गुरु की आज्ञा का पालन नहीं कर रहा था ।*

*दूसरों के कथित अवगुणों की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए । अपनी त्रुटियाँ देखनी चाहिए और उनका सुधार करना चाहिए । इससे दीनता आती है ।*

*बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न दीखा कोय,*
*जो मन खोजा आपना, मुझ-सा बुरा न कोय ।*

*(कबीर साहब)*

*हर मनुष्य के व्यवहार से पता चल सकता है कि कितनी प्रगति हुई है। यदि किसी को क्रोध आता है तो यह स्पष्ट है कि उसके अंतर में अभी अहं छिपा हुआ है। जितना अधिक मनुष्य क्रोधी होगा उतना ही उसके अंतर में अधिक अहंकार छिपा हुआ होगा। क्रोध भले ही न आये, परन्तु यदि कोई ऐसी बात हो जाती है जो मनुष्य कि इच्छा के अनुकूल नहीं होती और वह अंतर ही अंतर में दुखित होता है। यह अवस्था भी नीची है। परमार्थी की ऐसी अवस्था ऐसी हो जनि चाहिए कि वह हरेक स्थिति में प्रसन्न चित्त रहे चाहे कोई बात अपने अनुकूल हो या प्रतिकूल हो ।*

*मन एक प्रबल शक्ति है तथा ब्रह्माण्डी मन का यह अंश यह अंश है। वह ऊँचे अभ्यासियों को पहले ही अनुभव हो जाता है परन्तु संतजन ऐसे अनुभव को घोषित नहीं करते। यह अवस्था हर*

*परमार्थी पर आ सकती है, यदि उसका मन स्वच्छ हो। कुछ समय के लिए सोचा जाए तो सृष्टि की कोई बात ऐसी नहीं जिसका भेद परमार्थी को अनुभव न हो सके। परन्तु परमार्थी को किसी के भेद को जाहिर नहों करना चाहिए। ऐसा करने से अहं आ जाता है और सम्भव है कि मन गुप्त बातों को पुनः अनुभव न कर सके।*

# गुरु-शिष्य

जब कोई नया शिष्य सत्संग में आता है तो गुरुजन उससे बहुत प्रेम करते हैं । पुराने शिष्य से ऊपरी (बाह्य) प्रेम कम हो जाता है । कई बा तो पुराने शिष्य यह समझते हैं कि गुरुदेव उनसे प्रेम ही नहीं करते। यह बात ग़लत है । वह अन्तर में सब के लिये प्रेमभाव रखते हैं परन्तु नये शिष्य को ऊपरी प्रेम से भी बाँधा जाता है । यदि ऐसा न किया जाय तो उसका सत्संग में मन नहीं लगेगा । वह तो चाहता है कि ईश्वर से उसका तुरन्त प्रेम हो जाय । लेकिन जब तक अन्तर में प्रेम नहीं उत्पन्त होगा तो आध्यात्मिक-पथ पर चलने वाले को रस नहीं आयेगा और रस के बिना जीवन फीका लगेगा । इसलिये उत्साह देने के लिये गुरु – जन नये सत्संगी को बाह्य प्रेम अधिक जताते हैं । वह स्वयं प्रेम-रूप होते हैं । प्रेम से शिष्य इतना आकृष्ट हो जाता है कि वह परमार्थ-पथ पर चलने के लिये तैयार हो जाता है ।

नये सत्संगी की परीक्षा नहीं ली जाती । जब वह कुछ समय के लिये अपने रास्ते पर लगा रहता है या कुछ अधिकारी हो जाता है, तब परीक्षा ली जाता है। बिना परीक्षा लिये हुये प्रकृति माँ उसे आगे नहीं जाने देती । इतिहास बतलाता है कि बिना परीक्षा दिये हुये कोई परमार्थी ईश्वर के दर्शन नहीं कर सकता है। नये अधिकारी की परीक्षा उतनी अधिक कठिन नहीं होती है जितनी पुराने अधिकारी की । यह मार्ग तो सूली पर चढ़ने का है, सिर देने का है । जिसने सिर दिया वही अधिकारी हुआ । कष्ट किस पर नहीं आया चैतन्य महाप्रभू की जीवनी देखिये, वह कितने बड़े महापुरुष थे किन्तु उन को भी परीक्षा देनी पड़ी। इसी प्रकार स्वामी रामकृष्ण जी की भी परीक्षा हुई ।

*परमार्थ-पथ पर चलने वाले को घबराना नहीं चाहिए । यदि वह घबरा गया तो अपने पथ से हट जायगा । मन को शांत रखना चाहिए तथा माँ (प्रकृति) से सहयोग करना चाहिए । माँ अति प्रबल है । उसका मुक़ाबला करना कठिन है, उसकी सहायता लेकर आगे बढ़ना चाहिए । माँ खिलौने दे देती है, यदि परमार्थी उस खिलौने से प्रसन्न हो गया तो वह कहीं का न रहेगा । बच्चा*

*जब रोता है तो माँ कुछ खिलौने दे देती है और बच्चा चुप हो जाता है और वह अपने काम में लग जाती है। वह पुनः रोने लगता है, पुनः माँ कुछ दे देतो है परन्तु यदि बच्चा रोता ही रहे और किसी खिलौने से न माने तो माँ बच्चे को गोंद में ले लेती है । इसी प्रकार परमार्थी को भी खिलौने से प्रसन्न नहीं होना चाहिए । माँ (प्रकृति) धन दे देती है, स्त्री दे देती है और कई प्रकार की वस्तुएँ लुभाने को दे देती है । परमार्थी को उनसे प्रसन्न नहीं होना चाहिए, उसे तो प्रभु की गोद के लिए रोते ही रहना चाहिए और जब तक वह गोद में न ले ले, अपना कार्य करते ही रहना चाहिए ।*

# गंगा मातम

हरेक हिन्दू गंगा माता की इज्जत करता है लेकिन एक भक्त उससे कई सबक लेता है ।

(१) गंगा माता पहाड़ों से निकलती हुई, जो बहुत सख्त रास्ता है कभी पहाड़ों में गुम हो जाती है, कभी उसे पत्थर आगे जाने से रोकते हैं, मगर गंगा माता सब को काटती हुई, हरिद्वार में आ जाती है और फिर मैदान में बहती हुई समद्र की तरफ़ को चलती है। जितनी समुद्र से नजदीक होती जाती है और जमीन ढलवाँ होती जाती है, गंगा माता भी तेजी के साथ समुद्र की तरफ़ चलती जाती है और आखिर में समुद्र से मिल कर एक हो रहती है । इसी तरह से अभ्यासी को शुरू अवस्था में बड़ी रुकावटों का सामना करना पड़ता है क्योंकि मन की ज़मीन बड़ी सख्त होती है । लेकिन मैदान में आने पर रास्ता सरल हो जाता है । त्रिकुटी के बाद रास्ते पर चाल और भी तेज़ हो जाती है और प्रीतम और प्रेमी मिल कर एक हो जाते हैं ।

(२) गंगा माता समुद्र में समा गई। क्या बह खत्म हो गई ? नहीं, हरगिज नहीं । वह समुद्र के रूप में हर जगह फैली हुई है । जहाँ समुद्र है, बहाँ गंगा माता है। क्या जीव ईश्वर से मिलने के बाद नाश हों गया ? नहीं बह अमर हो गया। जहां जहाँ ईबवर है वहीं वह जीव भी मौजूद है और जब तक ईश्वर हर जगह ईश्वर की सत्ता क़ायम है वह भी मौजूद है । इसी तरह मोक्ष पुरुष मरते नहीं । वे हमेशा-हमेशा ईश्वर में रह कर सर्वव्यापी होकर हमेशा हमेशा जिन्दा रहते हैं । इसलिये गुरुजन मरते नहीं हैं ।

(३) गंगा माता एक मिनट के लिये भी चैन से नहीं रहती । अपना रास्ता बनाती हुई तेजी के साथ बराबर चली जा रही है और प्रीतम के नाम की ध्वनि हर वक्त जारी है। इसी तरह जो जीव अपने

*प्रीतम के लिये बेचैन  हैं और हर वक्त अपना रास्ता निकाल रहो हैं और हर वक्त अपने प्रीतम की याद कर रहा उसके लिये रो रहा है, वह आखिर में मिलकर एक हो जाता है ।*

*(४) गंगा माता सन्तों को भी नसीहत करती है । गंगा माता बही चली जा रही है । उसमें सभी किस्म के आदमी नहाते हैं, बुरे भी और भले भी । कोई फूल चढ़ाता है तो कोई गिलाजत (मल-मूत्रादि) डालता है। कोई उसको -जगतारिणी मानता कोई मामूली -नदी । कहीं हर के किनारे' वह रही है, कहीं वाग़ों मे से गुज़र रही है और कभी गंदगी  के ढेरों में से गुजरती है लेकिन उसे किसी का कुछ ख्याल नहीं है । वह सबसे उदासीन है । एक ही धुन है कि जल्दी से अपने प्रीतम से मिलकर एक हो जाय । सब के मैल धोती है, सबकी-गन्दगी. साफ़ करती है, तन्दरुस्ती और ताजगी देती है, बीमारी दूर करती है । जो उसे नापाक करते हैं उनको भी साफ करती है और बदले में कुछ "नहीं चाहती । यही संतों का लक्ष्य होता है ।*

# इन्सानी ज़िन्दगी का आदर्श

इन्सानी ज़िन्दगी का आदर्श यह है कि अपने आपको पहचाने कि मैं क्या हूँ. ईश्वर को पहचाने और उसमें अपनी हस्ती लय कर दे। जो इस आदर्श का रास्ता दिखलाये वही सच्चा आध्यात्म है. जिसने इस आदर्श की प्राप्ति कर ली है, वही सच्चा गुरु है। जो इस आदर्श की प्राप्ति करना चाहता है वही सच्चा भक्त है. जब ऐसा शिष्य हो और ऐसा गुरु हो तभी सच्चे लक्ष्य की प्राप्ति मुमकिन है. दुनियाँ की किसी भी चीज़ की ख़्वाहिश रखने वाला, चाहे वो कितनी भी अनमोल क्यों न हो , भक्त नहीं है. गुरु में कितनी ही विद्या क्यों न हो, कितना ही ज्ञान क्यों न हो, कितनी ही शक्ति क्यों न हो, अगर उसने अपन आप को ईश्वर को समर्पण नहीं किया है और ख़ुदी (अहंपना ) बाकी है तो वह सच्चा गुरु नहीं है. ऐसा अधिकारी शिष्य हो और ऐसा पूर्ण गुरु मिल जाये, तभी ईश्वर के दर्शन होते है. लेकिन शर्त यह है कि शिष्य पूर्ण श्रद्धा के साथ गुरु के बताये हुए रास्ते पर चले और दुनियाँ की बड़ी से बड़ी चीज़ को त्यागने में न हिचकिचाये, बल्कि ख़ुशी से त्याग दे। ऐसा संयोग होने से सफलता प्राप्ति होती है और आदमी क़ामयाब होता है. जितनी देर ऐसी हालत हासिल करने में लगती है उतनी ही देर आदर्श की प्राप्ति में होती है। दूसरे, इस रास्ते में हिम्मत की बड़ी ज़रुरत होती है. कभी घबराएँ नहीं. बराबर दुनियाँ से लड़ता रहे. दुनियाँ से लड़ना यह है कि दुनियाँ की ख़्वाहिशात और धोखे से अपने को अलहदा रखे। परमार्थ और दुनियाँ का हमेशा से बैर रहा है। बिना दुनियाँ को फ़तह किये परमार्थ नहीं मिलता। इसलिए बराबर दुनियाँ से लड़ता रहे और ईश्वर की कृपा और अपनी कामयाबी का पूरा यक़ीन रखे. कोशिश करने पर भी जब कामयाबी नहीं होती तो यह उसका इम्तिहान है. इम्तिहान यह है कि देखा जाता है कि उसमें कितनी हिम्मत है, उसे अपने लक्ष्य से कितना प्यार है और उसके लिए वह कितनी क़ुर्बानी कर सकता है। जितनी दुनियाँ की तक़लीफ़ें होती हैं और जितनी रुकावटें आती हैं और तुमसे दुनियाँ की चीज़ें

*छीनी जाती हैं, ये सब इम्तिहान हैं. तीसरे अगर ईश्वर से भी प्यार है और दुनियाँ से भी प्यार है तो तरक़्क़ी नहीं होती, वहीं का वहीं रहता है इसलिए ईश्वर के प्यार के साथ दुनियाँ के साथ तर्क (त्याग ) भी ज़रूरी है. गुरुजन ईश्वर प्रेम और दया के सागर हैं। वे हर समय प्यार करते हैं लेकिन हमें उसका अनुभव उसी वक्त होता है जब भक्त कोशिश करके अपने हृदय को दुनियाँ की ख़्वाहिशात और नफ़रत से शुद्ध कर लेता है, इससे पहले नहीं। इसलिए घबराना नहीं चाहिए. बुद्धि, मन और इन्द्रियों का हर समय शोधन करते रहना चाहिए,. यानी :-*

*।) हर समय ख़्याल रखो कि ईश्वर तुम्हारे साथ है और वह तुम्हारा सच्चा बाप है. प्यार से उसका पवित्र नाम लेते रहो।*

*2) जिस हालत में भी उसने तुम्हें रखा है चाहे वो अच्छी है या बुरी, उसमें खुश रहो। दुःख और सुख की दुनियाँ से ऊपर उठ । जब तक ज़िन्दगी है, दुःख और सुख तो आते ही रहेंगे। उनका आना ज़रूरी है, लेकिन अपने मन को उससे ऊँचा उठाओ और जो ख़िदमत या फ़र्ज़ ईश्वर ने तुमको सुपुर्द किया है उसे ईमानदारी और सच्चे दिल से पूरा करो। हर समय ख्याल रखो कि यह दुनियाँ ईश्वर की है। हम सब ईश्वर के हैं. जो काम हो रहा है और हम कर रहे हैं, ईश्वर के लिए कर रहे हैं. हम वहीं से आये हैं , उसी की दुनियाँ में रह रहे हैं और हमें वहीं जाना है।*

*3) अपने ख्यालों को हमेशा शुद्ध करते जाओ .ख्यालों पर क़ाबू पाने की कोशिश करो । अपनी बुद्धि को दुनियांवी ख़यालों से हटाकर सन्तों की वाणी, शास्त्रों के उपदेश और परमात्मा के प्रेम में लगाओ. इन्द्रियों का आचार ठीक करो. कोशिश करो कि इन्द्रियाँ दुनियांवी ग़िलाजत देखने के बजाय हर जगह ईश्वर को देखें. यही रहनी-सहनी का ठीक करना है*

*५) जब-जब मौक़ा मिले सन्तों, गुरुजनों की सेवा करो, उनको ख़ुश करो, उनका सत्संग करो, उनके उपदेशों को हित-चित से सुनो और उन पर अमल करने की कोशिश करो। हमेशा पूरी कामयाबी होगी. कभी निराशा नहीं होगी।*

*यही सच्चा, सीधा और सहज रास्ता ईश्वर को प्राप्त करने का है।*

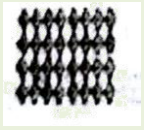

# परमार्थ दीनता से बनता है

परमार्थ दीनता से बनता है, केवल बल और पुरुषार्थ से नहीं। जब तक ईश्वर की कृपा नहीं होगी, काम नहीं बनेगा। सच बात तो यह है कि निम्नलिखित तीन बातें सभी सत्संगी भाइयों को याद रखनी चाहिए, और इसी से ईश्वर कृपा प्राप्त होगी.

1) केवल पुरुषार्थ से परमार्थ नहीं बनेगा

2) 'परमात्मा चाहेगा तो हम से करा लेगा' - केवल यह कहने से काम नहीं चलेगा

3) परमार्थ के लिए प्रयत्न करना होगा और ईश्वर के सामने दीन बनना पड़ेगा। दीन बनना यह है कि ईश्वर के हुक्मों पर यानि धर्म और सत पर चलना। दीनता आने पर ईश्वर प्रेम जागेगा, ईश्वर कृपा होगी, और ईश्वर कृपा होने पर परमार्थ बनेगा।

इन्सान नहीं जानता कि वह चाहता क्या है और माँगता क्या है। इन्सान अंतःकरण के घाट पर बैठा है। जैसी चाह उठती है वैसा ही वह करता है। जब परमात्मा के दर्शन की चाह होती है तो वह बेज़ार हो जाता है और ऐसा लगता है कि वह अब इस दुनियाँ की चीज़ें नहीं चाहता, पर उसे मालूम नहीं कि उसके अन्दर और बहुत सी चाहों के अम्बार लगे हैं। जब उनकी चाह उठेगी परमात्मा की चाह जाने कहाँ चली जायेगी।

अभ्यास यह है कि मन का घाट बदला जाय और चाहों (इच्छाओं) को एक-एक करके नष्ट कर दें। छोड़ना तो यह है कि अन्दर कोई चाह बाकी न रहे। यदि आपके अन्दर की चाहें बनी हुई हैं तो केवल जंगल में जाने से वैराग्य नहीं होता। इसलिए सन्त कहते हैं कि ऐसी ख़्वाहिशों को जो दुनियाँ के विरुद्ध नहीं हैं, पूरा कर देने में कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु भोग को शास्त्रों के मुताबिक़ भोगो।

*प्रारम्भ में उन चीज़ों को छोड़ो जो छोटी-छोटी चीज़ें हैं और आसानी से छोड़ी जा सकती हैं। बड़ी चीज़ों को लेने से निराशा होगी। आदतों का क़बूल कर लेना आसान है लेकिन उनको छोड़ना उतना ही मुश्किल है। शुरुआत छोटी-छोटी चीज़ों से करो। जब इनमें कामयाबी मिलेगी तो हिम्मत और शक्ति कुछ और बढ़ जायेगी। तब बड़ी-बड़ी चीज़ों से लड़ सकोगे। जब तक क़ुर्बानी न कर सको, तब तक बड़ी चीज़ों से मत लड़ो। रास्ता मन और बुद्धि के द्वारा ही चलना है। जब तक मन और बुद्धि शुद्ध और शान्त नहीं होंगे तब तक आत्मा दोनों से न्यारी नहीं होगी और ईश्वर के चरणों में नहीं लगेगी।*

*यह प्रेम-मार्ग है, कर्म-मार्ग नहीं। प्रेम-मार्ग बड़ा ही ऊँचा है। इसमें मन और बुद्धि को शुद्ध करते हैं। मन में मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार - सब आ गये। इन सभी को शुद्ध करने के पश्चात ईश्वर के दर्शन हो पाते हैं।*

*जब दो तारों में गाँठ लग जाती है तो वे अलग नहीं हो सकते। उन्हें अलग करने के लिए गाँठ खोलनी पड़ती है। इसी तरह मन और आत्मा में गाँठ पड़ गयी है। जब यह गाँठ छूट जाय तो परमात्मा के दर्शन हों। अज्ञानता ही यह गाँठ है। सांसारिक चीज़ों को अपना समझने लगे और सारी दुनियावीं चीज़ों में आनन्द देखने लगे, यही अज्ञानता है क्योंकि आनन्द आत्मा में है न कि विषयों में या दुनियाँ में। जब ज्ञान द्वारा यह भ्रान्ति छूट जाती है तब मालुम पड़ता है कि आनन्द तो आत्मा में ही है, इन वस्तुओं में नहीं।*

*जब आप सोते हैं तो स्वप्न देखते हैं और स्वप्न में सुखी और दुखी होते हैं। परन्तु आँख खुलने पर सब झूँठा जान पड़ता है। स्वप्न में कभी आप राजा बनते हैं और कभी क़त्ल किये जाते हैं। राजा बनने पर ख़ुशी होती है और क़त्ल किये जाने पर दुःख। यह सभी सुख-दुःख भ्रान्ति होने के कारण था। इसी प्रकार हम साँसारिक वस्तुओं के मोह में फँस जाते हैं और भ्रान्तिवश उनमें सुख*

*खोजते हैं। ख़्याल  से ही हम भ्रान्ति में फँसे हैं और ख्याल से ही छूटेंगे।  यह सारी दुनियाँ ख़्याल से ही बनी है और ख़्याल से ही छूटेगीभी . इसलिए सतगुरु का ख़्याल बाँध कर इन सभी साँसारिक वासनाओं और भोगों को काटते जाओ।  यही सबसे नज़दीक रास्ता ईश्वर को पाने का है।*

# सन्त सद्गुरु और शिष्य

## (प्रवचन )

### रामपुर १५-२-६७

सन्त वह हैं जिसने अपनी आत्मा को मन और माया के प्रपंच से आज़ाद करा कर परम अनामीपुरुष में लय कर दिया हो । सन्त दो तरह (श्रेणी) के होते हैं :--

(१) प्रथम, वे मोक्ष आत्मायें जो जीबों के उद्धार के लिए इस पिण्ड शरीर में आती हैं, मनुष्य चोला धारण करती हैं, और जीवों को इस भवसागर से पार कराती हैं । जब ऐसी महान आत्मायें आती हैं, तो लाखों आदमियों का भला हो जाता है, और सृष्टि का हरेक प्राणी, जाहिर बेजाहिर (प्रत्यक्ष या अदृश्य रूप से ) कुछ न कुछ रूहानियत की तरफ़ मायल (झुक जाना) हो जाता है । ऐसे महात्माओं के सम्पर्क में आने से कुछ न कुछ लाभ हरेक जीव को बिना मेहनत (प्रयास) किये ही जाता है, या थोडा बहुत प्रभ्यास करने से फ़ायदा हो जाता है । ऐसी महान आत्मायें हजार-बारह-सौ वर्ष बाद आ्राती हैं, जैसे सन्त कबीर दास जी नानकदेव जी, श्री शिवदयाल सिंह जी, हज़रत महम्मद साहब हजरत ईसामसीह, परमहंस रामक्रष्ण, चैतन्य महाप्रभू, महात्मा रामचन्द्र जी महाराज फ़तेहगढ़ी, आदि आदि ।

(२) दूसरे, क्योंकि उक्त महान आत्मायें धुर सतपद से आती हैं इसलिये ये महापुरुष उन अभ्यासियों में से जिनके पिछले कर्म बहुत कम शेष होते हैं और उनके कर्म इस जन्म में कट सकते हैं, ऐसे किन्हीं दो चार को अपनी तरफ़ खेंच लेते हैं, और एक ही जिन्दगी में "सचखण्ड" भें पहुँचा देते हैं । इन्हीं को "मुराद" (गुरुमुख शिष्य) कहते हैं । ये जीवन पर्यन्त अपने सन्त सदगुरु कर मिशन (शिक्षा) को फैलाने और उनके प्रेरित ध्येय की पूरा करने में लगे रहते हैं, जेसे धनी धर्मदास

जी, गुरु अर्जुनदेव जी, राय साहिब सालिगराम जी या साहब जी महाराज, हज़रत अबूबक्र सिद्दीकी, सेन्ट्स झाफ़ क्रिश्चियन फेथ, स्थामी विवेकानन्द जी, आदि, आदि । ऐसों को ज्यादा अभ्यास (परिश्रम), नहीं करना पड़ता, गुरु क्रपा से यानी मुहब्बत और सिर्फ सौहबत से काम बन जाता है, चाहे वे काम इस दुनियां के हों या उस दुनियाँ के । ऐसी आत्माओं से दुनियाँ का बड़ा उद्धार होता है, और उनकी सौहबत (सत्संग) और उनके बतलाये रास्ते पर चलने से बहुत से जीवों को फ़ायंदा होता है। ऐसी आत्मायें जगत में सदा मौजूद रहती हैं ।

हर सन्त, सदगुरु नहीं होता है। सदगुरु उसी को कहते हैं जो शिक्षक का काम करता है । जैसे हरेक "ग्रेजुएट" (स्नातक) टीचर (अध्यापक) नहीं होता । असली "टीचर" वही है जिसको शिक्षकों और शिष्यों की भलाई ईष्ट है, उनसे प्रेम करता है और अपनी तालीम (शिक्षा-विद्या) को उनमें प्रवेश कर सकता है ।

इस दूसरी श्रेणी के सन्तों में तीसरे दर्जे के वे साधक भी हैं जो तरक्की करके सचख़ण्ड तक तो न पहुँच सके हों, बल्कि ब्राह्माण्ड के किसी हिस्से में जाकर ठहर गये हों या वहीं अटक गये हों। और आगे उनका रास्ता बन्द हो गया हो। इन्हें कुछ  शक्तियाँ हासिल हो जाती हैं और वे अपने आपको सन्त समझने लगते हैं । इनको मन और माया पर कुछ काबू आ जाता है, कुछ सिद्धियाँ आ जाती हैं, लेकिन उनकी आत्मायें सचखण्ड तक नहीं पहुँचती हैं, और उनका अभी आदिपुरुष से मेला नहीं हुआ होता है । ऐसे लोगों से जीवों को फ़ायदा पहुँचता है, दुनियाँवी ग़रज़ पूरी होती है, इख़लाक़ (चरित्र) भी सुधरता है, लेकिन चूंकि वे खुद सचखण्ड तक नहीं पहुँचे होते हैं, इसलिये जीवों को उनसे रूहानी (आध्यात्मिक) फ़ायदा नहीं पहुँचता, और उनकी आत्मायें सचखण्ड तक नहीं पहूँचती, एवम् उनका आदि पुरुष से मेला नहीं होता । लेकिन अगर खुशकिस्मती (सोभाग्य) से ऊपर के दोनों श्रेणियों के सदगुरु से मेला हो जाता है तो इनका आगे का रास्ता खुल जाता है, तब

*वे सचखण्ड में पहुँच जाते हैं और अनामी पुरुष से मिल जाते हैं, और ऊपर लिखे दर्जे (श्रेणी) में आ जाते हैं ।*

*ऐसी आत्मायें जो पहले से ही मोक्ष होती हैं उनसे जीवों को, दुनियाँ और परमार्थ दोनों का लाभ होता है। जो आत्मायें नीचे से तरक़्क़ी करके सचखण्ड में पहुँचती हैं, उनसे शुरू में परमार्थ में मदद मिलती है। ऐसी सहायता को ईश्वरीय "निस्बत" (सामीप्यता) कहते हैं, परन्तु प्रायः इनको काल-पुरुष की कृपा से दुनियाँवी "निस्वत" भी मिल जाती है, और फिर उनकी कृपा से दुनियाँ के काम भी सिद्ध होने लगते हैं ।*

*इसी तरह शिष्य भी कई श्रेणियों के होते हैं। (१) प्रथम श्रेणी के शिष्य वे हैं, जो गुरु के आशिक़ (प्रेमी) होते हैं। सिर्फ गुरु से ही मुहब्बत करते हैं, और उनका अनुकरण करके अपनी हालत को बदलते जाते हैं । इनसे कहने की ज़रूरत नहीं पड़ती, ये अपने शुद्ध मन से गुरु के भाव को समझ जाते हैं, और इस तरह भाव बदलते हुये वे स्वतः गुरु का रूप बन जाते हैं, एवं एक ही जन्म में भवसागर से पार हो जाते हैं। जैसे रायसाहिब सालिगराम की अंगददेव जी, हज़रत अबुबक्र साहिब सिद्दीकी, आदि आदि । (२) दूसरी श्रेणी में वे लोग आते हैं, जो कि गुरु के कहने में चलते हैं, लेकिन तकलीफ़ को भी महसूस (कष्ट को मान) करके, दिल पर जब्त (नियन्त्रण) करते चलते हैं। इन दूसरी श्रेणी वालों को भी मोक्ष मिल जाती है परन्तु तीन चार जन्म में मिलती है। (३) तीसरी श्रेणी के वे लोग हैं, जो गुरु की बात एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल देते हैं लेकिन सत्संग में पड़े हुए हैं। इनका भी कभी न कभी उद्धार हो ही जाता है मगर बहुत समय लगता है ।*

*उक्त तीन श्रेणियों के शिष्यों में से, प्रथम श्रेणी के शिष्यों से गुरुजन कुछ नहीं कहते, वे सौहबत (सत्संग) की बबरकत ही से मुकम्मिल (पूर्ण) हो जाते हैं। दूसरी श्रेणी के शिष्यों में, अगर*

*वे यह देखते हैं कि शिष्य उनका कहना मान कर, उनके उपदेश पर चलते हैं और गुरु के कहने का बुरा नहीं मानते, अपितु गुरु-वचन से खुश (प्रसन्न) होते हैं कि गुरु ने कृपा करके उनके नुक्स (दोष) बता दिये और कोशिश बुराई को दूर करने की करते हैं, तो गुरुजन अपनी खयाली ताक़त (इच्छा शक्ति) से उन शिष्यों को सहायता करते हैं और ज़ाहिरी रूप से उनके नुक्स भी बता देते हैं। विपरीत इसके अगर वे गुरुजन यह देखते हैं कि उनकी तरफ़ से उनको या उनकी बतलाई बातों पर ये अमल नहीं करते बल्कि तबियत में बुरा मानते हैं तो गुरुजन ऐसों की ओर से बेपरवाह हो जाते हैं । गुरुजन इनको कुछ नहीं कहते, लेकिन नफ़रत भी नहीं करते बल्कि रहम और. दया करते हैं गुरु की दया, कृपा, महर सब पर होती है, लेकिन कमोवेश (न्यूनाधिक) फ़ायदा उठाना शिष्य की हालत पर मौकुफ़ (निर्भर) है ।*

# गुरु सोच समझ कर धारण करना चाहिये ।

(आगरा १७-१२-६७)

आध्यात्मिक जगत के नाम पर आजकल बड़ा धोखा चल रहा है। सैंकड़ों आदमी तरह तरह के ढोंग रचकर भोले भाले नासमझ लोगों को ठगते फिरते हैं। इसलिये गुरु बनाने या विश्वास करने से पहले सावधानी के साथ जाँच करनलें कि हम अपने आपको जिसे सौंप रहे हैं, वह वास्तव में महापुरुष ही कोई ढोंगी तो नहीं ? महापुरुषों को जाँचता भी आसान नहीं । महापुरुष को पहिचानना उस समय तक आसान नहीं जब तक कि बहू अपनी पहिचान स्वयं देना न चाहे ताकि अनअधिकारियों की भीड़ न लगे । इसी लिये वे अपने आपको छिपाये रखते हैं ।

यदि किसी सन्त के पास बैठने पर आपकी कमियाँ आपके समक्ष उभर आयें, अपनी कमज़ोरियों की जानकारी मिलने लगे और इन्हें दूर करने की भावना को उभार मिले, ईश्वर सम्बन्धी विभिन्न जिज्ञासाएँ जाग्रत होने लगें, मन में अनेक सत-सम्बन्धी भावनाओं को उत्साह मिलने लगे तो बस इससे आप यह अनुमान कर सकेंगे कि यहाँ पर आपकों शान्ति मिल सकती है । अब कुछ दिन आप उनका सतर्कता के साथ सत्संग करिये। यदि आपका हिस्सा उन सन्त के पास हुआ तो वे भी आपकी ओर विशेष रूप से आकर्षित होंगे और फिर सम्भवतः आपको भटकना नहीं पड़ेगा । यदि किसी सन्त से आपका नाता जुड़ गया है तो यह सत्य है कि संकटग्रस्त परिस्थितयों में गुरु से सहायता मिलती है। आगे प्रगति होने पर ऊपरी लोकों में भी गुरु के दिव्य दर्शन होते हैं और उसके विदेह होते हुए भी मार्ग निर्देशन मिलता रहता है ।

जो वास्तव में परमार्थ की खोज में हैं उन्हें कोई धोखा नहीं दे सकता। धोखा भी सिर्फ वही खाते हैं जो धोखा देने जाते हैं। जैसे सांसरिक कामनाओ की पूर्ति के लिये सिद्धों की तलाश में घूमने वाले लोगों को बार बार धोखा खाना पड़ता है। क्योंकि ऐसे लोग थोड़े से चढ़ावे में अधिक धन की

कामना करते हैं या पैसे के बल बूते पर सन्तान, नौकरी, तरक्की, रोग-नाश आदि की कामनाएं पूर्ण कराना चाहते हैं। ऐसे ही व्यक्ति धोखा खाते हैं क्योंकि यहाँ परमार्थ की बात न रहकर व्यापारिक बात बन जाती है। जो तेज़ होता है वह लाभ उठा जाता है। मैं नहीं समझता कि यदि कोई व्यक्ति वास्तव में ईश्वर के लिये तड़पता है और वह किसी सच्चे सन्त के पास जाये और फिर उसे धोखा मिले ? धोखा दुनियाँदारी में है। फिर भी सावधानी के साथ इस पथ के पथिक बनो । क्योंकि विवेक के उपयोग से हानि कम ही होती है । अतः आप विवेकशील बनकर महापुरुषों के पास जायें, शंकालु बनकर नहीं । किसी को एक दम गुरु धारण करना आवश्यक नहीं है । कुछ दिन सत्संग करो । उन महापुरुष को आप भाई, पिता, दोस्त, कुछ भी मान लो, आपको लाभ ही होगा । सन्त के चारों ओर का वातावरण आध्यात्मिकता से भरपूर रहता है। किस को कितना लाभ होता है यह जिज्ञासु एवं भक्त की ग्रहण शक्ति पर निर्भर है परन्तु यह निश्चयात्मक तथ्य है कि बगैर गुरु के ईश्वर का प्रेम नहीं मिल सकता । सत् तक तो कोई भी व्यक्ति अपने आपको ले जा सकता है पर ईश्वर का प्रेम किसी मसहापुरुष के सत्संग के बगैर नहीं मिल सकता । इस तथ्य की रक्षा उन महापुरुषों ने भी की है जो अवतार रूप में आये थे जेसे भगवान श्री रामचन्द्र, भगवान श्री कृष्ण, स्वामी दत्तात्रेय , कबीर दास जी, बुरुनानक देव, स्वामी जी महाराज ज्जी शिवदयाल सिंह जी, आदि । इन्होंने भी लौकिक दृष्टि से गुरु धारण करके गुरु परम्परा का होना आवश्यक तथ्य के रूप में प्रतिपादित किया है।

कोई कोई कहते हैं कि पूजा में हमारा मन तो लगता ही नहीं । जहाँ जरा ब्यान करने की चेष्टा की वहाँ ख्यालों के तूफ़ान उठने लग जाते हैं। ऐसे लोगों ने मन को अभी तक समझा नहीं इसी लिये इसे इतनी बड़ी परेशानी मान रहे हैं। मन क्या है ? पहले इसे थोडा समझो । मन हमारे जन्म जन्मान्तर के संस्कारों का Bundle (संग्रह) है। हमारे शास्त्रों में जो ८४ लाख योनियों

*का वर्णन किया है वह कोई कपोल कल्पित धारणा नहीं हैं बल्कि एक तथ्य है। वर्तमान मन में सभी जीवों के स्वभाव की झांकियां मौजूद हैं। हमारे मन के अन्दर शेर का सा दम्भ, हाथी की सी मस्ती, कुत्ते एवं साँड की सी कामुकता, लोमडी एवं चीते की सी चालाकियाँ, कौवे जैसी धूर्तता , सर्प जैसा क्रोध, देवताओं और राक्षसों जैसी वृत्तियाँ और उनके व्यवहार स्वरूप पुराने संस्कार मौजूद हैं । बह सभी संस्कार हमें भोगने हैं। किसी एक के संस्कार प्रबल होने पर हम उस योनि को पहले भोग चुके होंगे परन्तु शेष संस्कारों को अब मानव योनि में भोगना है। इस प्रकार मन पर अनेक संस्कारों का भार है। अतः जब तक इन सभी की सफ़ाई नहीं हो जायेगी तब तक मन में स्थिरता नहीं आ सकेगी । मन बाहर की वस्तुओं का रसिया रहा है। अतः आप उसे एकाएक कैसे रोक सकोगे। सन १६१३ से लेकर अब तक बराबर अभ्यास करने एवं अटूट गुर कृपा के उपरान्त अब भी मन कभी-कभी एक दम चंचल हो उठता है। यह अवश्य है कि चंचलता अधिक देर तक परेशान नहीं कर पाती ।*

*मन की उपमा पारे से, बिगड़े घोड़े से एवं मस्त हाथी से दी जाती है। अतः इस पर क़ाबू पाने के लिये इसे मज़बूत बंधन से बाँधना होगा और फिर धीरे धीरे समझा समझा कर काबू में लाना होगा ।*

## *सहो रास्ता*

*सन्तों की सौहबत से, उनकी कृपा से और भोगों के नतीजों से, दुनियाँ की बेसबाती (नाशवानता) और उसकी असलियत (वास्तविकता) ज़ाहिर (प्रकट) होती है।*

*दुनियाँ की नश्वरता का अनुभव तब होता है जब साधक दुनियाँ से उपराम हो जाता है और भोगों से दुखी होकर ऊब जाता है। तब निकलने की कोशिश करता है। जब अपनी कोशिश में*

*नाकामयाब होता है तब किसी पथ-प्रदर्शक या गुरु की जरूरत महसूस करता है और उसी की तलाश करता है।*

*गुरु के मिल जाने पर साधक उससे प्रेम करता है जिसके फलस्वरूप उसको ज्ञान प्राप्त होता है और धीरे धीरे उनके आदेशों पर चल कर उनमें अपनी फ़नाइयत (लय) हासिल कर लेता है। जितनी फ़नाइयत हो जाती है, साधक दुनियाँ के भोगों से उतना ही बेज़ार हो जाता है और प्रकाश तथा शब्द जाहिर होने लगते हैं, जिनका आनन्द हासिल होने से दुनियाँ से और बेज़ार हो जाता है। शब्द और प्रकाश के अभ्यास से धीरे-धीरे आत्मा की हक़ीक़त (वास्तविकता) खुलने लगती है। जितनी आत्मामन के फंदों से निकल जाती है उतना ही अनामी पुरुष के लिए प्रेम जागने लगता है। जितना प्रेम बढ़ता जाता है उतनी ही आत्मा सत्पुरुष में लय होती जाती है। आत्मा सतपुरुष में लय होकर जिन्दा (जीवित) रहुती है। यही असली रूहानी जिंदगी है, यही निर्वाण-पद है ।*

*ऊपर के बयान से हर व्यक्ति जान सकता है कि वह किस अवस्था में से गुजर रहा है, उसने कितना रास्ता तय कर लिया है और कितना बाक़ी है। यही जानता इन्सानी जिंदगी का मकसद (ध्येय) है।*

# फ़ैज़ - ईश्वर कृपा

(सिकंदराबाद, दिनांक १२-४-६८ )

ईश्वर की तरफ से फ़ैज़ (कृपा की धार) हरेक प्राणी पर पहुँच रही है। उसी तरह गुरु का फ़ैज़ हरेक शिष्य पर पहुँचता है। जो उसे (गुरु को) याद कर रहा है वह उस फ़ैज़ को महसूस करता है और फ़ायदा उठता है. सूरज की रौशनी सब पर एकसी पड़ती है। जो चाहते हैं उसकी गर्मी और प्रकाश से फायदा उठाते हैं। लेकिन चमगादड़ को कुछ नहीं दिखाई देता। इसमें सूरज का क्या दोष है ? जितनी जिसमें ग्रहण शक्ति ज़्यादा है, जितनी जिसकी लगन अधिक है उतना ही अधिक फ़ायदा उसको होता है. जिस किसी को शौक़ होता है वह अपनी कोशिश से उस फ़ैज़ की धार को खेंच लेता है. इसमें फ़ैज़ का क्या दोष है। पत्थर, बनस्पति , जानवर, आदमी अपनी Consciosness (जागृति) के मुताबिक़ फ़ायदा उठा रहे हैं। पत्थर Sensitive ( सचेत ) नहीं है इसलिए उस पर असर नहीं के बराबर होता है। उसके मुक़ाबले में बनस्पति ज़्यादा Sensitive ( सचेत ) है, उस पर असर भी ज़्यादा होता है। जानवर बनस्पति से ज़्यादा सचेत होते हैं उन पर उनसे ज़्यादा असर होता है। और मनुष्य सबसे अधिक सचेत (Sensitive)है, इसलिए उस पर सबसे ज़्यादा असर होता है। लेकिन स्वभाव और अधिकार के अनुसार उसका अनुभव अलग-अलग होता है. मामूली आदमी ईश्वर की तरफ से बेफ़िक्र रहता है. इसलिए वह कम अनुभव करता है। भक्त अपने दिल के दरवाज़े खोले रखता है, वह उस फ़ैज़ को क़बूल कर रहा है इसलिए वह अनुभव भी मामूली आदमियों के मुक़ाबले ज़्यादा कर रहा है। जितना जिसका ख़्याल उस तरफ गया उतना ही आनन्द वह अनुभव करता है. ख्याल भी बराबर रहे और ईश्वर से प्रेम भी हो तब आनन्द मिलता है। प्रेम तब होगा जब मन तम और रज से हटकर सत वृत्ति पर आएगा. अगर मन तम और रज में फँसा हुआ है तब आनन्द नहीं आएगा।

# निज कृपा, गुरु कृपा, ईश्वर कृपा।

परमात्मा तब तक मदद नहीं करता जब तक हम खुद नहीं चाहते. पहले अपनी कोशिश ज़रूरी है. इसी को निज कृपा कहते हैं। लेकिन अपनी कोशिश करने से ही कामयाबी नहीं आती। जब हम सब कोशिश कर लेते हैं, थक जाते हैं, कोई बस नहीं चलता, तब हमारे अहंकार पर चोट पड़ती है, वह चकनाचूर हो जाता है, दीनता आने लगती है और हम कहने लगते हैं - " हे प्रभु। हमारे बस का नहीं है, तुम्हारी कृपा के बिना कुछ नहीं होगा. जब हम दीन बन जाते हैं तो खुदी का पर्दा हट जाता है और रास्ता साफ़ होने लगता है, गुरु कृपा का आभास होने लगता है। यह सोचकर मत बैठो कि परमात्मा बड़ा दयालु है. वह सब काम खुद ही कर लेगा. पुरुषार्थ करो - यह निज कृपा है. पहले निज कृपा फिर गुरु कृपा और तब ईश्वर कृपा होती है। आराम से लेटे रहो, कुछ करो धरो मत और सोचो कि सब हो जायेगा। कैसे हो जायेगा ? कोई आदत बुरी पड़ गयी है और छूटती नहीं है तो उसे दूर करने की कोशिश करो। अगर किसी डर की वजह से कोई आदत छूटती है तो वह अस्थायी है. जहाँ डर गया, फिर वह आदत वापस आ जाएगी। उससे नफरत पैदा हो जाये तब वह स्थायी रूप से जाएगी. इसका एक सरल तरीक़ा संतों ने बताया है - गुरु से प्रेम बढ़ाओ और जितना प्रेम बढ़ता जायेगा उतनी दूसरी चीज़ों से नफ़रत होती जाएगी। गुरु के प्रेम में तुम वह काम करना स्वयं बन्द कर दोगे जो उन्हें पसन्द नहीं है. इस तरह बुरी आदतें धीरे-धीरे खुद छूटती चली जायेंगी।

# राज़ी-ब-रज़ा (यथा लाभ संतोष)

इस संसार में सब दुखी हैं। अस्पतालों में जाकर देखो तो दुःख का वारापार नहीं मिलेगा। किसी का लड़का बीमार है तो वह उसके दुःख से दुखी है. कोई रुपये की कमी की वजह से दुखी है. ऐसे अनेक सांसारिक दुःख हैं और इन दुखों को दूर करने का यत्न मनुष्य दिन रात करते रहते हैं किन्तु इन दुखों को दूर हो जाने पर असली सुख की प्राप्ति नहीं होती. जब तक दुनियाँ में हो, ऐसे दुःख सुख तो आते ही रहेंगे. ख्वाहिश पैदा करते हो तो संस्कार बनते हैं और उन्हें भुगतने के लिए आवागमन का चक्र चलता रहता है. जब तक यह ज्ञान नहीं होगा कि यह दुनियाँ सुख की जगह नहीं है, यहाँ तो दुःख ही दुःख हैं, इससे छुटकारा पाने की ख़्वाहिश पैदा नहीं होगी और जब तक इस दुनियाँ से छुटकारा नहीं होगा, सच्चा सुख नहीं मिलेगा. भगवान बुद्ध की शिक्षा इस मामले में सीधी सादी है।

आवागमन से छूटने की ख़्वाहिश करना चाहते हो तो और सब ख़्वाहिशों को छोड़ो। अच्छी ख़्वाहिश करोगे तो अच्छा मिलेगा, बुरी करोगे तो बुरा मिलेगा. यहाँ तो हर चीज़ का बदला है। जो दुःख-सुख या बीमार आती हैं वो पिछले कर्मों का नतीजा है. भोगने तो पड़ेंगे ही। उन्हें अगर ख़ुशी से भोग लिया जाये तो आगे के संस्कार नहीं बनेंगे. इसीलिए सूफ़ियों में राज़ी-ब-रज़ा की शिक्षा दी जाती है. जिस हाल में मालिक ने रखा है, उसी हाल में खुश रहो. दूसरा तरीक़ा यह है कि यह ख़्याल करो कि अच्छा हुआ इतनी सी ही तकलीफ हुई या इतना ही नुकसान हुआ। अगर और ज़्यादा तक़लीफ़ होती या और ज़्यादा नुक़सान होता तो क्या होता?

सबसे ऊँची राज़ी-ब-रज़ा यह है कि जब कोई दुःख या तक़लीफ़ आये तो यह ख्याल करें कि बड़ा अच्छा हुआ, संस्कार कटा. इस संस्कार के कटने से कुछ तो नज़दीकी ईश्वर से हुई। संतों की निराली राज़ी-ब -रज़ा है और वह अनोखी और बेजोड़ है. उन पर जब कोई कष्ट आता है तो वे

*खुश होते हैं - कहते हैं कि ईश्वर हमारा प्रीतम है, वह तो हमें छेड़ रहा है. क्या अदा है उसकी, कभी हमें तक़लीफ़ देता है और कभी आराम. उन्होंने अपने आप को ईश्वर में इतना लय कर लिया है कि उन्हें यह भी ख्याल नहीं आता कि हमारे संस्कार कट रहे हैं या हम ईश्वर के नज़दीक जा रहे हैं। उन्हें अपने जिस्म तक का होश नहीं रहता कि हम मर गए या ज़िन्दा हैं. तक़लीफ़ को छोड़ने का तो उनके सामने सबाल ही नहीं उठता . वे तो उसका स्वागत करते हैं. किसी संत ने कहा है --*

*ऐ बला आ कि तू मेरे लिए रहमत होगी ,*
*तेरे पहलू में छिपी मेरे माशूक की सूरत होगी.*
*वायदे वस्ल चूं शब्द नज़दीक*
*आतिशे शौक तेज़ तर गरदद*

*(पिया मिलन की घड़ी पास को ज्यों ज्यों आवे - प्रेम विरह की ज्वाला तड़पन बढ़ती जावे)*

*जितना रास्ता कटता जायेगा उतना ही अपने निज घर की याद आती जाएगी। उधर की तरफ खिंचावट बढ़ती जाती है, तड़प बढ़ती जाती है। लेकिन माया ऐसी आसानी से निकलने नहीं देती और अटका देती है. अच्छे-अच्छे गिर जाते हैं. यदि ईश्वर से प्रेम है, उनमें लय है और उन पर पूर्ण भरोसा है तो उनकी कृपा होती है और साधक फिर रास्ते पर चल पड़ता है। इसलिए जब तक़लीफ़ आवे तो अपने भाग्य को सराहे और सोचे कि यह प्रभु की बड़ी कृपा है।*

# मनमानी मत करो

## (सिकंदराबाद, ता० १३-४-६८)

ईश्वर की भक्ति सभी में हैं और सभी ईश्वर की प्राप्ति कर सकते हैं, लेकिन मन विघ्न डालता है। इसलिए मन से एहतियात (सावधानी) रखनी चाहिए यानी जो मन को भाये वह ही नहीं करना चाहिए। इससे मन शक्तिशाली और मोटा हो जाता है। बाप को बेटे से मोहब्बत होती है और वह सदा उसका फ़ायदा चाहता है। उसको नसीहत भी उसी काम की करता है जिसमें उसका भला हो। जो बाप ईश्वर का भक्त है तो यह ज़रूरी है कि मामूली आदमियों के मुक़ाबले में उसकी बुद्धि ज़्यादा शुद्ध हो चुकी है और वह बहुत दूर तक की सोच सकता है जिसे आम आदमी नहीं सोच सकते। जब आपने यह मान लिया कि यह हमारे हितेषी हैं, यह जो बात कहेंगे हमारे हित की कहेंगे, तो फिर तुम्हें मनमानी नहीं करनी चाहिए। जब दुनियाँ के मामलों में आप हमारी बात नहीं मानते तो फिर परमार्थ के मामलों में क्या मानोगे ? बात क्या है - क्योंकि आपका मन बीच में बिघ्न डालता है। मान लीजिये कोई बात आपके आचार्य ने आपसे कही या किसी के ज़रिये अपने ख़्याल को ज़ाहिर किया तो अच्छाई इसी में है कि उसे मान लेना चाहिए। आपको अपनी अक्ल से उसे परखना नहीं चाहिए।

एक बार हमारे गुरुदेव ने एक योजना बनाई कि सब सत्संगी मिलकर एक कोलोनी बनाएं और उसमे रहने के लिए मकान बनाएं। उन्होंने खुद इस बारे में मुझ से कुछ नहीं कहा। मैंने अपनी बुद्धि से उसे परखा और ऐतराज़ (आपत्ति) किया। गुरुदेव ने इस योजना को रद्द कर दिया। बाद में जब मुझे मालूम हुआ कि यह गुरुदेव कि योजना थी तो मुझे बहुत पछतावा हुआ और अपनी भूल कि माफ़ी चाही। उन्होंने कहा – "तुम मेरे ख्याल को कबूल न कर सके – इसका

मतलब यह है कि तुम मुझसे प्रेम नहीं करते।" बात सही थी। गुरु जो कुछ करेगा, आपके फ़ायदे के लिए ही करेगा। अगर उनकी बात को नहीं मानोगे और बुरा मान कर बैठ जाओगे तो फ़ायदा क्या होगा ? देखने में आता है कि गुरु की बात को मानते वहाँ तक हैं जहाँ तक उनका मन क़बूल करता है। गुरु के मुक़ाबले में अपने मन को ज़्यादा Important ( महत्व का ) मान लिया है और मन को ही अपना दोस्त समझ रखा है। लेकिन यह भूलते हो कि मन ही हमें दुनियाँ में ले जाकर फँसाता है। जब मन को ही दोस्त मान रखा है, उसी का कहना करते हो तो इस दुनियाँ से निकलोगे कैसे ? अगर तुम गुरु को अपना सच्चा हितेषी मानते हो तो उसकी बात भी मानो।

ऐसे भी लोग हैं कि जिनके पास धन की कमी नहीं है। अगर वह घर बैठ कर भी खायें तो शायद उनकी तीन पीढ़ियाँ भी उसे ख़तम नहीं कर सकें। फिर भी रूपये में फँसे हैं, परमार्थ क्या कमायेंगे? जिसे अपने कुटुम्ब का पालन-पोषण करना है उसे तो नौकरी या तिज़ारत करनी ही पड़ेगी। उसकी बात अलग है, लेकिन नौकरी-पेशा या दुकान करने वालों को भी दुनियाँ में, अपने पेशे में, ईमानदारी से बरतना चाहिए। क्या आजकल नौकरी में और दुकानदारी में ईमानदारी है ? कोई भी अपना काम साफ़ नियत से नहीं करता और अगर करने की कोशिश भी करे तो लोग करने नहीं देते। ख़ैर, किसी हद तक यह भी excusable (क्षमा के योग्य) है। लेकिन जिनके पास है लेकिन फिर भी वे फँसे हुए हैं, वे मन के ग़ुलाम हैं, परमार्थ कैसे कमायेंगे ? किसी संत ने कहा है- '

'ख़ुदा ख़ुदा भी करे और ख़ुदी का दम भी भरे।
बड़ा फ़रेबी है, झूँठा है वो ख़ुदाई का॥ "

दुनियाँ तो छोड़ना नहीं चाहते, एक क़दम आगे नहीं बढ़ाना चाहते और चाहते हो तरक़्क़ी हो। कैसे हो ? जब तक ख़ुद कोशिश नहीं करोगे तब तक गुरु-कृपा और ईश्वर-कृपा नहीं होगी। हम

चाहते हैं कि हमारे भाई भी यह समझ जाएँ। तुम उस मामले में जो परमार्थ की तरफ ले जाता है कुछ सुनना नहीं चाहते, करना तो अलग रहा। भक्ति कैसे होगी ? फिर शिकायत करते हो कि तरक़्क़ी नहीं होती।

इस दुनियाँ में हर चीज़ का बदला है। तुमने दान दिया, बड़ा अच्छा किया, लेकिन क्या उसे लेने वापस नहीं आओगे ? लड़का नौकर रखा तो क्या उससे ख़िदमत नहीं चाहोगे ? हो गया बदला या नहीं ? अच्छे और शुभ कर्म, मन को सतोगुणी बनाते हैं लेकिन सतोगुणी मन भी आवागमन से नहीं छुड़ाता। जो कामी, क्रोधी और लालची हैं, वे परमार्थ के लायक़ नहीं हैं - यह संतों का कहना है। फँसे है सबसे हीन अवस्था में, पहुँचना चाहते हो सबसे ऊँचे लोक में। जिससे कहो कि तुम्हारी फलाँ बात ठीक नहीं है, वही नाराज़ हो जाता है। कोई बिरला है जिससे कहते हैं तो वह सुन लेता है वर्ना जिससे कहते हैं वह मुँह बना लेता है बुरा मान जाता है , कैसे तरक़्क़ी हो ? जो गुरु के कहने पर चला वह इस भवसागर से निकल गया। जो मन का साथी है वह गुरु का साथी नहीं। अगर तुम गुरु की सहायता लोगे तो वह तुम्हें मन के पंजे से निकाल देगा। मोक्ष प्राप्त करने के लिए मन का मर्दन करना होगा। जब तक मन में फँसे हो, वह इस भवसागर से नहीं निकलने देगा। तमोगुणी मन जानवर बनाएगा, रजोगुणी मन दुनियाँ में लौटा कर लाएगा। मरते समय सोचोगे कि यह काम रह गया, वह काम रह गया। इसी में अटक कर प्राण निकलेंगे और फिर आना पड़ेगा। सतोगुणी मन धर्म पर ले जाता है मोक्ष नहीं देता।

जो काम करो, निष्काम भाव से करो, कोई ख़्वाहिश मत उठाओ। यह ऊँचे अभ्यासियों के लिए है। सोते वक्त सोचो - "आज कोई इच्छा उठाई " ? अगर उठायी तो संस्कार बन गया। रात को सोने से पहले अपने मन से हिसाब लो। आगे जाकर भूख प्यास की ख़्वाहिश भी मिटा देते हैं। मिल गया तो खा लिया, नहीं मिला तो सोच लिया कि आज परमात्मा की मर्ज़ी नहीं थी, और

*उसी हालत में ख़ुश रहे। असली गुरु तो तुम्हारे अन्दर है, उसी से हिदायत मिलती है। लेकिन जब तक वहाँ तक पहुँच नहीं है, तब तक बाहरी गुरु से मदद लो और उसके कहने पर चलो ।*

*जो आता है दुनियाँ के लिए रोता आता है। सन्तों के यहाँ दुनियाँ नहीं मिलती। वे तो दुनियाँ उजाड़ते हैं। यह अलग बात है कि किसी का परमार्थ बिगड़ रहा है और दुनियाँ की कोई मुसीबत ऐसी है जो उसकी तरक़्क़ी में बाधक है, उसके लिए दुआ कर देते हैं वर्ना जब हरेक का हर वक़्त यही रोना है, तो कहाँ तक किस-किस के लिए दुआ करें। जितना दुनियाँ में फँसोगे उतनी ही ख़्वाहिशें बढ़ेंगी, और जितनी ख़्वाहिश बढ़ेंगी उतनी ज़्यादा दुःख-तकलीफें भी आएगी। इसलिए दुनियाँ में इतना फँसे जितने में कम से कम काम चल सके, जितना कम से कम ज़रूरी हो। किसी काम को करने से पहले ख़ूब सोच लें कि क्या यह काम वास्तव में ज़रूरी है, क्या इसके बिना काम नहीं चलेगा ? अगर ज़रूरी हो तो करो, वर्ना छोड़ दें ।*

*भक्ति बढ़ाने के लिए सबसे ऊँचा तरीक़ा यह है कि मन के फन्दे से बचें और ईश्वर से नाराज़ न हों। ज़रा गर्मी हो जाये तो कहने लगते हैं - 'हाय बड़ी तपन है' , कभी बारिश ज़्यादा हो गयी तो लगे परमात्मा को कोसने। यह सब बुरी बातें हैं। परमात्मा के सब काम सर्वहित के लिए होते हैं। वह जो करता है सब अच्छाई के लिए ही करता है। उसके कामों को अपने मन की कसौटी पर परखते हो। जिस हाल में वह रखे, उस हाल में खुश रहो। उफ़ भी न करो - कोई ख़्वाहिश मत उठाओ। 'शुक्र' वही है कि अगर तकलीफ़ भी हो रही है तो भी उसकी सराहना करो। हर समय राज़ी -ब-रज़ा में रहो। मान लो किसी का लड़का बीमार हुआ। अगर अच्छा हो गया तो ख़ुश हैं और अगर मर गया तो लगे भगवान को कोसने, संध्या-पूजा बन्द कर दी। यह नहीं सोचा कि जिसने दिया था उसने ले लिया। ये परमात्मा से मोहब्बत हुई या लड़के से ?*

*मन के बन्धनों को ढ़ीला करते चलो। प्रत्येक वस्तु को परमात्मा की समझो। मोह छूटता जायेगा। जिस हाल में परमात्मा रखे, उसमें ख़ुश रहो। गुरु के कहने पर चलो और परमात्मा की याद में गाफिल न हो। ईश्वर तुम्हे प्रेम देगा।*

# मन और माया से आत्मा को आज़ाद करो

(सिकंदराबाद, ता० ३०-९-६८)

हर एक मज़हब में मोक्ष प्राप्त करने का अलग -अलग तरीक़ा हैं। हर एक आचार्य ने वक़्त और ज़माने के लिहाज़ से जन - साधारण की सुविधा को देखते हुए मोक्ष के तरीक़े को सहल बनाया हैं। इस कलियुग में परमात्मा का नाम ही मोक्ष का ज़रिया हैं। इससे सहल कोई उपाय नहीं हैं। पुराने ज़माने में प्राणायाम और हठयोग को लेकर चलते थे लेकिन अब इससे काम नहीं चलता। न तो अब इसके जानने वाले रहे और न अब लोगों की तंदुरुस्तियां, वक़्त की कमी और आजकल की ख़ुराक ही प्राणायाम साधने के योग्य हैं। ऐसे लोग अब भी देखे गये हैं जो कहते हैं कि वे तीन - तीन घंटे प्राणायाम करते हैं लेकिन मन नहीं सधता। संत -मत में मन को क़ाबू में करना सबसे ज़रूरी बात हैं। इसलिए इस मत के अभ्यासियों को प्राणायाम की ज़रूरत नहीं हैं। हाँ, गृहस्थ आश्रम में तन्दुरुस्ती क़ायम रखने के लिये और वायु साधने के लिए भले ही कोई प्राणायाम कर ले लेकिन किसी जानकार से सीखकर करना चाहिये वरना नुक़सान हो जायेगा।

हमारे ज़िस्म के अन्दर कई layers (आवरण, परदे ) हैं उनमें सबसे भीतर परमात्मा बैठा हैं। संत उसको बाहर नहीं तलाश करते बल्कि अपने अन्दर देखते हैं। इस काम में दो बातें ज़रूरी हैं। पहली यह कि रास्ता जानना चाहिये और दूसरी यह कि ऐसा Guide (पथ प्रदर्शक ) चाहिये कि जो ख़ुद रास्ता चल चुका हो, उससे अच्छी तरह वाक़िफ़ हो और जिसमें दूसरे को रास्ता बताने की योग्यता हो और वह तुम्हारा हमदर्द भी हो। इसके अलावा जिज्ञासु में पक्का इरादा रास्ता चलने का हो और रास्ता बताने वाले में उसकी पूरी श्रद्धा और विश्वास हो, तब रास्ता चला जा सकता हैं। रास्ता जानने वाले की पहरेदारों से जान पहिचान हो तभी वे अन्दर जाने देंगे वर्ना पीछे ढ़केल देंगे। कहने का मतलब यह हैं कि guide (पथ प्रदर्शक गुरु ) ऐसा हो जो परमार्थ के रास्ते की सब कठिनाइयों को जानता हो और पन्थाई को उनमें से होकर निकाल ले जाने की पूरी योग्यता हो।

वैसे तो रास्ते में बहुत सी रुकावटें और परदे हैं लेकिन ख़ास - ख़ास परदे सात हैं, सातवें आसमान के ऊपर परमात्मा बैठा है।

(1) पहला पर्दा अन्नमय कोष कहलाता है जो मनुष्य का स्थूल शरीर है वह पंच -महाभूतों (तत्वों) से बना है। यह पहली रुकावट। जब मनुष्य इंद्रियों द्वारा कोई आनन्द लेता है तो उसे उस आनन्द की याद बनी रहती है। जब -जब उस आनन्द की याद आती है तो फिर उसी आनन्द में फँस जाता है। नाक गंध का स्वाद लेती है। जिव्हा खाने का स्वाद लेती है, कान मीठी ध्वनि या गाने का स्वाद लेते हैं, वगैरह-वगैरह। ये सब मनुष्य की सुरत को बहिर्मुखी बनाते हैं और दुनियाँ में फंसाते हैं।

(2) प्राणमय कोष :- मनुष्य के शरीर में जो हवा सांस के जरिए आती - जाती है और जिससे वह ज़िन्दा है वही दूसरा परदा है। अभ्यास में जब मनुष्य का ध्यान स्थूल शरीर से हट कर ऊपर को चढ़ता है तो वह इस दूसरे परदे पर आ जाता

है। इसी सांस को साधने के लिए प्राणायाम किया जाता है जिससे nervous ( स्नायु , नाज़ुक़ नाड़ियाँ ) पाचन क्रिया, शरीर में रक्त का प्रवाह, आदि बातें ठीक रखती हैं। सन्त - मत में प्राणायाम का अभ्यास नहीं कराया जाता क्योंकि यह बातें ऊँचा अभ्यास करने से स्वयँ सध जाती हैं।

(3) मनोमय कोष :- तीसरा पर्दा मन का है जिसका विस्तार बहुत बड़ा है मन में बेशुमार विकार और वासनायें भरी पड़ी हैं। मन उन्हीं का गुनावन उठाया करता है। ज़्यादातर अभ्यासी यहीं अटके रहते हैं। बिना गुरु की मदद के मन से निकलना नामुमकिन है।

*(५) विज्ञानमय कोष :- चौथा पर्दा बुद्धि का हैं जो बहुत सूक्ष्म हैं। बुद्धि अपने ख़्याल उठाती रहती हैं। अधिकतर विद्वान और ऊँचे अभ्यासी इसी जगह ठोकर खाते हैं। उन्हें अपनी विद्या, बुद्ध , चतुराई आदि का गर्व हो जाता हैं और उसी में फंस कर रह जाते हैं। अभ्यासी की बुद्धि शंकाएँ पैदा कर लेती हैं। वह एक विषय पर क़ायम नहीं रहने देती।*

*(5) आनन्दमय कोष :- पाँचवाँ पर्दा आनन्द का हैं। जब मन सधने लगता हैं तब जो आनन्द आने लगता हैं उससे अभ्यासी यह समझते हैं कि हम सब कुछ हो गये। लेकिन यह आनन्द स्थायी नहीं हैं। जब चिराग़ की रोशनी किसी object ( वस्तु ) पर पड़ती हैं तब वह चीज़ दिखाई देने लगतीं हैं। इसी तरह जब आत्मा का प्रकाश जब माया पर पड़ता हैं तब आनन्द मालूम होता हैं लेकिन यह आनन्द आत्मा का ख़ालिस आनन्द नहीं हैं। आत्मा के आनन्द में एक तरह का ऐसा सरूर होता हैं जो अपने आप पर आधारित होता हैं और जो बयान नहीं किया जा सकता।*

*(6) आत्मा का स्थान - यहाँ अभ्यासी की स्थिति आत्मा में हो जाती हैं। यहाँ अभ्यासी 'अहं ब्रह्मास्मि ' कहने लगता हैं।*

*(7) सातवां स्थान ईश्वर का हैं - इस स्थान पर अभ्यासी की अवस्था तुरियातीत की हो जाती हैं।*

*संत मत में ईश्वर को जानने का बहुत आसान तरीक़ा हैं। मनुष्य का ज़िस्म दो चीज़ों से मिलकर बना हैं, एक मन और माया, दूसरी आत्मा। मन की तीन हालतें हैं। सबसे निचली हालत तमोगुण की हैं जिसमें हैवानी ख़वास ( पाशविक वृत्तियाँ ) रहती हैं। मन की दूसरी हालत रजोगुण की हैं जो बीच की अवस्था हैं। इस हालत में मन एक ख़्याल पर नहीं रह सकता। उसके विचार बराबर बदलते रहते हैं । कभी वह अच्छाई की तरफ़ जाता हैं, कभी बुराई की तरफ़। मन*

की तीसरी हालत सतोगुण की हैं जो पहली दो हालतों के बनिस्बत ज्यादा stable ( ठोस )हैं। इसमें मन अच्छे -अच्छे विचार उठाया करता हैं। अभ्यासी के सब काम सतोगुणी मन की अवस्था पर आकर नेकी और भलाई के होने लगते हैं। लेकिन जब तक भलाई का ख़्याल सामने हैं तब तक बुराई का ख़्याल छिपे तौर पर मौजूद हैं। इसलिए यहाँ से भी गिरावट का डर रहता हैं। यह दुनियाँ कालदेश हैं। मन और माया काल के ही आधीन हैं और जहाँ काल का राज्य हैं वहां की सब चीज़ें नाशवान हैं। एक solar system ( सौर मण्डल ).का मालिक ईश्वर हैं और जो सब सौर मण्डलों का मालिक हैं वह परमेश्वर हैं जो हजारों ईश्वरों पर हुकूमत कर रहा हैं। उसी को सन्तों में सतपुरुष दयाल और सूफ़ियों में मालिके -कुल कहते हैं। जितने सितारे आप देखते हैं ये सब सूर्य हैं और उनका एक -एक मण्डल हैं और हर एक मण्डल में दुनियाँ आबाद हैं। ऐसे - ऐसे अनगिनत सौर मण्डल हैं। न मालुम अब तक कितने राम और कृष्ण के अवतार इन सौर मण्डलों में हो चुके हैं। अगर इन बातों का अन्दाज़ लगाने बैठें तो आदमी की अक़्ल हैरान रह जाय।

मनुष्य की आत्मा अज्ञान में पड़ी थी और उसके ऊपर ख़्वाहिशात के पर्दे पड़े हुए थे। ईश्वर की कृपा हुई और उसने उसे इस दुनियाँ में भेज दिया कि ख़्वाहिशात को भोग कर सब परदे दूर हो जायें और आत्मा स्वयँ प्रकाशित हो जाये। लेकिन हुआ इसका उलटा। बजाय परदे दूर करने के मनुष्य इस दुनियाँ की चीज़ों में आनन्द लेने लगा और बजाय आज़ाद होने के और उलझ गया .

इस दुनियाँ में मन का राज्य हैं। मन आत्मा से शक्ति लेकर उसी पर हुकूमत करता हैं। मन हमेशा बदलता रहता हैं और उसके प्रभाव में आकर हम भी बदलते रहते हैं। जब कोई वस्तु मिलती हैं तब सुःख होता हैं और जब छिन जाती हैं तब दुःख होता हैं। यह दुःख -सुःख लगातार चलता हैं। इस दुनियाँ का आख़िरी अन्जाम जुदाई हैं। जहाँ यह हालत हैं, वहाँ असली सुःख कैसा ? संतों के देश यानी दयाल देश में आत्मा ही आत्मा हैं। वहाँ आत्मा ही आत्मा, प्रेम ही प्रेम,

आनन्द ही आनन्द है। तुम उसी देश के वासी हो लेकिन अज्ञान के कारण अपने घर से दूर पड़े हो। अज्ञान अभी बना हुआ है, उसे दूर करो। तुमने इस दुनियाँ में आकर अपने देश को भुला दिया है और यहाँ की वस्तुओं से मोह पैदा कर लिया है। तुम कहते हो 'यह मेरा है'। यहाँ कोई किसी का नहीं है। अगर तुम्हारा है तो तुम्हारे मन के अनुसार चलेगा। लेकिन नहीं, वह अपने मन के अनुसार चलता है क्योंकि मन सबका अलग -अलग है। वह कभी आपके अनुसार नहीं चलेगा। इस दुनियाँ की एक ख़ास बात यह है कि दो चीज़ें कभी एक सी नहीं होतीं। कुछ न कुछ फ़र्क अवश्य होता है। अगर फ़र्क न हो तो दो एक सी चीज़ें एक हो जायेंगी।

आत्मा पर से ख़्वाहिशात के परदे हटा दो। अपना रूप देखो। तुम्हारा रूप क्या है ? तुम ईश्वर के हो, ईश्वर तुम्हारा है। इस दुनियाँ में कोई तुम्हारा नहीं है। यहाँ की चीज़ों को एक - एक करके तजुर्बा करके छोड़ दो। ये तो तुम्हें तजुर्बा करने के लिये मिली थीं। भ्रम से तुम इन्हें अपनी समझ बैठे। अगर गुरु के कहने में चलोगे तो यहाँ की चीज़ों का तजुर्बा भी होता चलेगा और उन्हें छोड़ते भी चलोगे। अगर बराबर गुरु के कहने में चलते रहोगे तो एक न एक दिन तुम्हें असली तजुर्बा यानीं आत्म -बोध हो जायेगा। पहले गुरु के कहने पर विश्वास करो, उनमें श्रद्धा लाओ, उनका सत्संग करो और उनके कहने पर चलो। जो ऐसा करता है उसको आसानी से आत्म - बोध हो जाता है। जो तर्क -वादी होते हैं उन्हें कठिनाई होती है। विश्वास से रास्ता ज़ल्दी तय होता है।

अनुराग और वैराग्य दोंनों एक हैं। किसी चीज़ को अच्छा समझ कर क़बूल करना अनुराग और किसी चीज़ को बुरा समझ कर उसे छोड़ना वैराग्य है। जो वस्तु ईश्वर की तरफ़ ले जाती है उसे पकड़ो, वही अनुराग है और जो वस्तु ईश्वर से छुड़ाती है उसे छोड़ते चलो, यही वैराग्य है। दोनों का लक्ष्य एक है। आपके यहाँ गुरु को प्यार करते हैं और जो चीज़ उसकी मरज़ी के ख़िलाफ़ है उसको छोड़ते चलते हैं। यह प्रेम का रास्ता है।

*कई ऐसे भाग्यशाली होते हैं जिन्हें गुरु ख़ुद प्यार करता है लेकिन ऐसे बहुत थोड़े होते हैं। ईश्वर करे आप में से हरेक ऐसा हो। कुछ ऐसे होते हैं जो गुरु को प्यार करते हैं। वे नहीं जानते कि वे क्यों ऐसा करते हैं ? उन्हें कोई ग़रज़ नहीं होती, अगर कुछ होती भी है तो ईश्वर को पाने की ग़रज़ होती है। लेकिन यह ग़रज़ नहीं कहलाती। ये लोग भी भाग्यशाली हैं। कुछ ऐसे लोग हैं जो दुनियाँ से बेज़ार हैं और इससे छूटना चाहते हैं। ये आते हैं और गुरु से प्रेम करने लगते हैं। लेकिन परमार्थ की ग़रज़ के साथ -साथ इन्हें दुनियाँ की भी ग़रज़ होती है। ऐसे लोगों की संख्या बहुत है।*

*आपके यहाँ पहली चीज़ सतगुरु की तलाश है। सतगुरु वह है जो कामिनी, कांचन और यश - इन तीन चीज़ों से ऊपर हो। ईश्वर का पूर्ण भक्त हो। सिवाय ईश्वर की बात के दूसरी बात न करे। उसे आप से कोई ग़रज़ न हो। उसके पास बैठने से मन शाँत हो, उसकी कथनी और करनी एक जैसी हो, सिवाय दूसरों की भलाई के और कुछ न चाहता हो। अगर सौभाग्य से कोई ऐसा महापुरुष मिल जाय तो उससे अपना मन मिला दो, अपने मन को तोड़ दो। जब उसके मन में आ जाओगे तो मन मिल जायेगा। यही फनाइयत (लय) है जिसमें जिस्म तो मिलकर एक नहीं होता, मन एक हो जाता है, आदतें वैसी ही हो जाती हैं। यहाँ तक कि शकल भी बदल जाती है।*

*तुम जो बनना चाहते हो, पहले उसकी ख़्वाहिश करो और फिर उसके लिए यत्न करो। जितनी कोशिश करोगे उतना मिलेगा। जिस गुरु के ध्यान के साथ - साथ जीवन में एक बार भी आपको प्रकाश नज़र आया है, तो समझ लीजिये कि वह सचखण्ड तक पहुँचा हुआ है। पहले ऐसे गुरु की तालाश करो फिर उसका सत्संग करो और उसका दिया हुआ नाम लो। वह नाम चाहे राम हो, कृष्ण हो, ॐ हो या चाहें कोई और नाम हो। जिस नाम को जप कर उसने परमेश्वर को हासिल किया है वही नाम तुम्हें भी परमेश्वर की प्राप्ति करा देगा।*

*जब ऐसा गुरु मिल जाए तो चौबीस घंटे यही ख्याल करो कि मेरा और गुरु का मन एक है।*

*गुरु ने जो दिया है उसको ईश्वर का नाम समझ कर जाप करते रहो लक्ष्य तक पहुँच जाओगे।*

# अपने आपको पहचानो

## (प्रवचन गुरुदेव)

## (सिकंदराबाद, ता० २१-९-६८)

अपने चरित्र का निर्माण करो। इन्द्रिय-भोग को सन्तुलित करो। महापुरुषों ने कहा है कि इन्द्रिय भोग (sex ) मनुष्य को जितना नीचे धकेलता है उतना और कोई कर्म नहीं ढकेलता. मनुष्य जब कोई काम करता है तो उतनी देर के लिए उसके मन की स्थिति वहाँ स्थिर हो जाती है। उसकी attention (सुरत) वहीं रहती है। जब वह काम करना बन्द कर देता है और उसकी attention वहाँ से हटती है तो उसका कुछ न कुछ हिस्सा वहाँ रह जाता है. बार-बार वही कर्म करते रहने से और अपने विचारों को उसी स्थान पर लगाने से मनुष्य लगातार नीचे होता जाता है और जब आधे से ज़्यादा तवज्जह वहाँ रह जाती है तब वह एक क़दम (step) नीचे गिर जाता है और आख़िरकार जानवरों की दशा में उतर जाता है. अगले जनम में वह जानवर ही बनता है. जब हम गुरु या परमात्मा का ध्यान करते हैं तो हमारी attention (तवज्जह) ऊँची उठ जाती है. जब हम अपनी attention (सुरत) को वहाँ से हटाते हैं तो उसका कुछ न कुछ हिस्सा वहाँ रह जाता है. इस तरह बराबर अभ्यास करते रहने से जब तवज्जह का आधे से ज़्यादा हिस्सा वहाँ रहने लगता है तब हम एक क़दम (step) ऊपर उठ जाते हैं. यदि गुरु या परमात्मा का ध्यान लगातार करते रहें तो हम ऊँचे उठते जायेंगे और एक न एक दिन उसकी नज़दीकी (समीप्य) हासिल कर लेंगे।

मन को शान्त कर लेना ही सारा अभ्यास है। मनुष्य के शरीर में दो चीज़ें मिलकर काम कर रही हैं. एक मन व माया, दूसरी आत्मा। आत्मा अन्दर है, मन उसके ऊपर है और उसके ऊपर माया है. मन और माया बेजान हैं। लेकिन उनको शक्ति आत्मा से मिलती है. दूसरे शब्दों में यों समझिये कि आत्मा के ऊपर जन्म-जन्मान्तर से ख़्वाहिशात के जो गिलाफ़ चढ़े हुए हैं उन्हीं का दूसरा नाम मन और माया है। आत्मा से प्रकाश पाकर वे नमूदार (प्रकट) होने लगते हैं। अगर

यह आवरण हट जायें तो आत्मा शुद्ध और निर्लेप होकर स्वयं प्रकाशित हो जावेगी। इसलिए ज़रूरत इस बात की है कि मन और माया से आत्मा को साफ़ करो। आत्मा का आनन्द और सरूर (bliss) महसूस होने लगेगा। आत्मा का आनन्द एक ऐसा अद्भुत आनन्द है कि उसे पाने के बाद किसी और आनन्द की ज़रूरत नहीं होती, उस आनन्द से मनुष्य कभी तृप्त नहीं होता। जिस आनन्द से मनुष्य की तृप्ति न हो और ख़्वाहिशात बनी रहे , वह मन का आनन्द है। मन के आनन्द में एक आनन्द के बाद दूसरे आनन्द की ज़रूरत होती है। ऐसा आनन्द अस्थायी (temporary ) होता है और स्वतंत्र ( independent ) नहीं होता। इसका आधार किसी दूसरी वस्तु पर होता है। आत्मा स्वयं आनन्द है। उसका आनन्द permanent (स्थायी) ever lasting (सदा क़ायम रहने वाला) होता है। उसका आधार किसी दूसरी वस्तु पर नहीं होता। वह आनन्द इतना ऊँचा होता है कि उसके मुक़ाबले में दूसरा आनन्द कोई मायने नहीं रखता। अगर तकलीफ़ हो रही हो और वहाँ से तवज्जह हटाकर आत्मा के आनन्द में लगा दी जाय तो तकलीफ़ का ख़्याल भी नहीं आता।

अपना रूप समझो। आत्मा को मन से हटाओ, वासनाओं से रहित हो जाओ. जब आत्मा के ऊपर का परदा हट जायेगा फिर तुम अपना असली रूप देख सकोगे कि तुम कौन हो ? तुम तो ईश्वर ख़ुद हो. जब तुम अपने आपको पहिचान जाओगे तब किसकी पूजा करोगे ? तुम स्वयं आनन्द हो, आनन्द की तलाश कहाँ करते हो ? यह मन ही है जो हमारी आस्तीन का साँप बना बैठा है. दोस्त बनकर वही हमको खा रहा है. यह कहता रहता है कि दुनियाँ में अपना अपना धर्म पूरा करो, ऊँचा ले जाकर मारता है. लेकिन याद रखो, सबसे अव्वल धर्म यह है कि अपनी आत्मा का साक्षात्कार करो. बाकी सब धर्म गौण (secondary ) हैं. जीवन का लक्ष्य यही है. माया ने ऐसा फँसाया है कि निकलने नहीं देती। अगर निकलने की कोशिश करते हैं तो फिर फाँस देती है, कोई न कोई बहाना लगा ही देती है. मन कहता है तुम्हारी स्त्री है, बच्चे हैं, धन-सम्पत्ति, आदर है। जहाँ

इधर ख़्याल गया और फँस गए। जो ऊँचे अभ्यासी हैं उन्हें मन दूसरी तरह मारता है. अगर भाइयों की सेवा का काम सुपुर्द कर दिया गया तो समझने लगे - 'मैं गुरु हूँ, पैर पुज रहे हैं, मन आनन्द ले रहा है. यह क्या किया तुमने ? अहंकार में फँस गए. अधम योनियों में गए, जिसने अपने आपको गुरु समझ लिया. गुरु तो केवल एक है – परमेश्वर ! वही असली गुरु है।

दुनियाँ से सिर्फ उतना ही ताल्लुक़ रखो जितने से काम चल जाये। ज़्यादा मत फँसो। लाला जी (मेरे गुरुदेव) कहा करते थे कि तुम्हें खुश रहने का गुर बतायें। वह गुर यह है कि अगर एक जूता मौजूद है तो दूसरा खरीदने मत जाओ। कहने का मतलब यह है कि जब एक चीज़ से काम चल सकता है तो दुहैरी-तिहैरी चीज़े मत खरीदो। जितने उनमें attach (लिप्त) रहोगे, उतने फँसोगे. लेकिन सब कर्म करते हुए भी अपने सर्व-प्रथम कर्तव्य (foremost duty) को मत भूलो। अपने असली रूप को पहिचानो। नकली रूप जो बना रखा है, उसे उतारकर फेंक दो।

अहं ( ego ) तो सब में है और रहना भी चाहिए। जिसमें अहं नहीं रहेगा, वह ज़िन्दा कैसे रहेगा ? मगर झूँठा अहं निकाल दो। " मैं ऐसा खूबसूरत हूँ, मेरी स्त्री इतनी सुन्दर है, मैं धनवान हूँ, इत्यादि। " यह सब झूँठा अहं है, नकली है, कभी स्थायी नहीं रहता. रूप गया, स्त्री मर गयी, धन चला गया, अहं जाता रहा. जो अहं हमेशा रहे उसे क़ायम रखो. जैसे 'अहं ब्रह्मास्मि ' में दीनता का अभाव है। इसीलिए इस स्थिति पर आकर भी संत 'अहं ब्रह्मास्मि ' नहीं कहता, वह कहता है कि जो कुछ है वह ईश्वर से है। सूफ़ियों ने इसे 'हमा-अज़ोस्त' कहा है. इस झूँठे अहं को या तो ईश्वर प्रेम के द्वारा समाप्त कर दो या इसे ज्ञान से दूर करो। ख़्याल करो कि मैं नहीं हूँ, जो कुछ है ईश्वर है. मन और माया को ख़त्म कर दो. मन और माया से रहित जो बचेगा वही 'तुम ' हो।

अपने आपको सबका सेवक समझ कर, गुरु में ईश्वर का रूप देखकर, सब चीज़ों को गुरु से मिला समझ कर, चलते जाओ. मन से पूछते चलो 'यह कैसे हुआ' और जबाब देते जाओ ' गुरु

*कृपा से ऐसा हुआ। ' रास्ता सुगम हो जायेगा' Guru is not the body. God manifests through the body. यानी गुरु का स्थूल शरीर गुरु नहीं है, ईश्वर उस स्थूल शरीर के द्वारा प्रकट हो रहा है. उसमें अपने आपको लय कर दो. जब सम्पूर्ण लय हो जाओगे तो अपने आपको पहचान जाओगे कि तुम कौन हो ?*

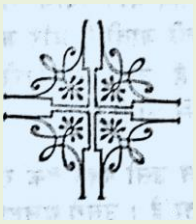

# वैराग्य

## (प्रवचन गुरुदेव)

## (सिकन्द्राबाद, दि० १९ अगस्त, १९६८)

वैराग्य चार प्रकार का होता है । एक होता है शमशान वैराग्य । यह बहुत ही आरज़ी (temporary अस्थायी ) होता है। जब मनुष्य किसी मुर्दे के साथ श्मशान तक जाता है तब यह ख्याल पैदा होता है कि दुनियाँ नाशवान है, हरेक को एक दिन मरना है, केवल ईश्वर या राम के नाम को छोड़ कर सब असत्य है, दुनियाँ के सगे सम्बन्धी और सब भोग पदार्थ यहीं रह जाते हैं, मनुष्य की आत्मा ही केवल अकेली जाती है और जो भले बुरे कर्म मनुष्य ने अपने जीवन में किये हैं उनके संस्कारों के ग़िलाफ़ (आवरण) अपने ऊपर चढ़ा कर ले जाती है ।

यह वैराग्य केवल उसी वक्त तक रहता है जब तक मनुष्य उस वातावरण में रहता है। उससे अलहदा होने के बाद यह वैराग्य जाता रहता है। एक बार कोई व्यक्ति कबीर साहब से मिलने गया । वे घर पर मौजूद न थे । मालूम हुआ कि किसी मुर्दे के साथ श्मशान गये हैं। वह कबीर साहब को पहचानता न था। उसने उनके लड़के से पूछा कि मैं कबीर साहब को इतने सारे आदमियों में कैसे पहचानूंगा । उन्होंने उत्तर दिया कि जब तुम श्मशान में पहुँचोगे नो यह देखोगे कि सब मनुष्यों के सिर के चारों तरफ़ प्रकाश का एक हल्का सा घेरा होगा । जब वे श्मशान से घर को लौट रहे होंगे तब वह घेरा हल्का हो जायगा और घर आने तक बिल्कुल ख़त्म हो जायगा । जिस व्यक्ति के सिर पर से प्रकाश का घेरा समाप्त न हो, वैसा ही रहे, वह कबीर साहब हैं। उसने वैसा ही किया और कबीर साहब को पहचान लिया और उनसे सवाल किया कि इसकी क्या वजह है कि आपके सिर पर प्रकाश का घेरा क़ायम है, वाक़ी सब आदमियों के सिर से अलहदा हो गया है। कबीर साहब ने उत्तर दिया कि जिस वक्त सब के सिर पर प्रकाश का घेरा था उस वक्त सबकी हालत श्मशान

*वैराग्य की थी जो वापिसी के वक्त कम होने लगी । इसलिये उनका प्रकाश भी लोप होने लगा । मुझको दृढ़ वेराग्य प्राप्त है. इसलिये मेरा प्रकाश का घेरा क़ायम है ।*

*दूसरा, लखूटा वेराग्य कहलाता है । इसका नाम लखूटा इसलिये है कि जैसे लाख आग की गर्मी पाकर पिघल जाती है और आग से दूर होने पर फिर जम जाती है इसी तरह किसी दुःख मुसीबत के आने पर मनुष्य को वेराग्य पैदा हो जाता है और उस दुःख के दूर हो जाने पर वह वेराग्य जाता रहता है और मनुष्य फिर अपनी मन की वासनाओं को पूरा करने में तथा दुनियाँ के व्यवहारों में पहले की तरह व्यस्त हो जाता है ।*

*जब किसी का कोई दुनियाँवी नुक्सान होता है, जैसे चोरी व्यापार में घाटा, बगैरा बगैरा, तो आदमी सोचने लगता है कि दुनियाँ में कुछ नहीं है । मैंने इतनी मेहनत की, इतना कमाया और अन्त में नतीजा कुछ नहीं निकला । यह वैराग्य उस नुकसान के पूरा हो जाने पर जाता रहता है। जैसे व्यापार में नुक़सान देने के बाद फिर मुनाफ़ा हो गया, रुपया चला गया मगर फिर आ गया, एक स्त्री मर गई, दूसरी शादी कर ली तब इस प्रकार का वैराग्य जाता रहता है । कहने का मतलब यह है कि किसी चीज़ के आभाव में वैराग्य और उसके मिल जाने में उससे अनुराग होने लगता है ।*

*तीसरा मन्द वैराग्य कहलाता है । इसमें दुनियाँ के साथ राग और वैराग्य दोनों पाये जाते हैं। कभी यह ख्याल आता है कि दुनियाँ नाशवान है, रहने की जगह नहीं है, इसमें दिल लगाना बेकार है, इसका त्याग करना चाहिये। जब ऐसे ख्याल उठते हैं तो मनुष्य अपने आपको दुनियाँ की तरफ से रोकता है । जब मन की इच्छाओं का रेला (प्रवाह) आता है तो यह वैराग्य वहा चला जाता है। बार-बार मनुष्य कोशिश करता है। कभी वह दुनियाँ पंर सवार होता है, कभी दुनियाँ उस पर। अगर दुरनियाँ ही उस पर सवार रही तो आदमी गया गुज़रा हुआ भर जो उसने दुनियाँ को काबू में कर लिया तो मैदान उसके, हाथ रहा। इस दशा में आदमी को चाहिये कि बहुत समझ-बुझ कर इस*

*राह में क़दम रखे ओर अपने मन पर पूरा-पूरा काबू करे । जरा सी ग़लती बना बनाया काम बिगाड देगी ।*

*चौंथा वैरांग्य दृढ़ वैराग्य कहलाता है और यही सबसे पक्का वैराग्य है । इसमें मनुष्य दुनियाँ को पूरी तरह तके (त्याग) कर देता है श्रौर उसके मन में दुनियाँ की बू (गन्ध) भी बोक़ी नहीं रहती । यह वैराग्य हमेशा एक-सा बना रहता है और यह चित्त की वह दशा है जब परमार्थी विचार मन पर पूरी तरह काबू पा लेते हैं। दृढ़ वैराग्य ही असली वैराग्य है। शेष तीन वैराग्य केवल उसकी छाया मात्र हैं क्योंकि वे घंटते-बढ़ते और आते-जाते रहते हैं ।*

*जब मनुष्य विवेक-बुद्धि से विचार करता है और यह सोचता है कि असली, और सच्चा सुख, कहाँ है, तब-वह इस नतीजे पर आता है कि दुनियां और उसके सामान में वह सुख नहीं जो स्थायी रहने वाला हो और जिसकी तलाश है। यह निष्कर्ष निकलने पर व पक्का इरादा कर लेता है और परमार्थी चाल चलने लगता हैं । और जितनी मंजिल तय करता जाता है उतना ही दुनियाँ से वैराग्य और ईश्वर से अनुराग होता जाता है ।*

*कोई कोई अभ्यासी कहते हैं कि ध्यान करते समय पहले तो हमें शब्द सुनाई देता था, अब नहीं सुनाई देता, या पहले तो पूजा में खूब मन लगता था, अब नहीं लगता। इसकी क्या वजह हैं। वजह इसकी खुली हुई है । मन तो एक ही है और वह एक ही तरफ लगेगा । जिस समय वह एक वस्तु को प्यार करता हैं, दूसरा को छोड़ देता है । पहले पहल जब मनुष्य सत्संग में आता हैं तब उसे एक नई बात मालूम होती है और उसे वह बड़े शौक़ से क़बूल करता है और दिल उसमें लगाता है। लेकिन आाहिस्ता- आाहिस्ता जब उसकी तबियत दूसरी तरफ़ राग़िब हो जाती हैं तो सत्संग में शौक़ की कमी होने लगती है, दूसरे, जब मन (उसके साथ आत्मा) शुरू में सधने लगता हैं तो उसके साथ आत्मा भी स्थिर होने लगती है और उसकाः आनन्द मालूम होने लगता है। लेकिन जब कुछ दिनों*

*बाद आत्मा गुरु कृपा से ऊपर चढ़ने लगती हैं और आदतें जो पुरानी हैं, छूटती नहीं हैं, तब उन दोनों में संघर्ष और खीचातानी होने लगती है । आत्मा ऊपर को चलती है और मन नीचे को खींचता है । इस खींचातानी में अभ्यास में तबियत नहीं लगती । लेकिन अभ्यासी की यह हालत उस वक्त तक रहती हैं जब तक वह रजोगुणी मन पर रहता है । जब कुछ दिनों के अभ्यास और गुरु कृपा से हटकर सतोगुण पर ठहरने लगता हूँ तब हालत ऐतंबार (भरोसे के)-काबिल हो-जाती है । इस हालत में अगरचे (यद्यपि) कभी-कभी दुनियाँ की फ़िक्रें घेर लेती हैं, मन अभ्यास में नहीं लगता, लेकिन आप उसे छोड़ नहीं सकते । जिसने सतगुरु का सत्संग कर लिया है और रास्ता चल लिया है वह छोड़ कर जायेगा कहाँ ? उसकी हालत ऐसी हो जाती है जैसे जहाज़ का कौआ ।*

*जैसे शरीर के पालने के लिये रोटी खाते हैं इसी तरह आत्मा की गिज़ा अन्तरिक अभ्यास है। मन से और शरीर से दुनियाँ का काम करते रहो और आत्मा परमात्मा का ध्यान करती रहे। खाना न खाने से शरीर को ग़िज़ा नहीं पहुँचती और वह बीमार हों जाता है। इसी तरह परमात्मा का ध्यान न करने से आत्मा बीमार हो जाती है, मनुष्य सुख और शान्ति खो बैठता है और बुराइयों फेस जाता है। पूजा, ध्यान और आशान्तरिक अभ्यास अपना फ़रज समझ कर किये जाग्रो । फ़ायदा होता है बहुत अच्छा, नहीं होता तो भी बहुत अच्छा। सचाई पर क़ायम रहो और जो रास्ता तुम्हारे गुरु ने बताया है उस पर चलते रहो । जो व्यक्ति रास्ता चलते रहते हैं वे तरक्की करते जाते और ज्यों-ज्यों उमर बढ़ती जाती है और दुनियाँ में नाकामयावी होती जाती है तो वही दुनियाँ दुख का रूप बन जाती है और उससे वैरग्य होने लगता है । शुरू-शुरू की हालत में दुनियाँ सर पर सवार रहती है। ऐसे तो बहुत कम होते हैं, जो बचपन से ही पुराने संस्कारी होते हैं और दुनियाँ की बातों में शुरू से ही दिलचस्पी नहीं लेते । उनकी तबियत का रुझान बचपन से ही परमात्मा की तरफ़ होतां*

*हैं। ज़्यादातर आदमी ऐसे होते हैं जो दुनियाँ का तजुरबा विवेक बुद्धि द्वारा करके तथा सतसंग के प्रभाव से सच्चाई को समझने लगते हैं और दुनियाँ से वैराग्य तथा परमात्मा के चरणों में अनुराग पैदा करने की कोशिश करते हैं। यदि किसी सन्त से मेल हो जाता है तो वैराग्य का जो ख्याल मन में उठता है उसमें मज़बूती आती जाती है ।*

*तमोगुणी और रजोगुणी विचार हमेशा ईश्वर बे की तरफ से खयाल हटाते रहते हैं और दुनियाँ की तरफ लगाते हैं। जो लोग सन्तों की सौहवत में लगे रहते हैं और उनके वचनों को ध्यान देकर सुनते हैं और उन पर अमल करते हैं उनके मन पर चोट पड़ती रहती है और वह दुनियाँ को छोड़ते चलते हैं ।*

*असली रूहानियत (आत्मबोध) क्या है ? अपना रूप पहिचानो और उसमें स्थिति पैदा करो। अभ्यास करते-करते धीरे-धीरे मन और इन्द्रियों से ऊँचे होते जाओ और तुम्हें यह आभास होने लगे कि हम आत्मा हैं, ईश्वर का रूप हैं, हमारे अन्दर ईश्वर ने अपने आपको छिपा कर हमें प्रकट कर दिया है । हमारा फ़र्ज यह है कि अपने आपको छिपा कर ईश्वर को जाहिर कर दें । यही सन्तों की रूहानियत है । तकलीफ़ें क्यों आती हैं ? रूहानियत दबी हुई है । तकलीफों से हमारे कर्मों का कफ्फारा (स्वाहा) होता जाता है, आत्मा के ऊपर से माया के पर्दे हट जाते हैं और आत्मा उभरती है । दुःख, सुख की छाया है । जब कभी दुःख आये तो धीरज पूर्वक सहन करो और अपने आपको सराहो कि परमात्मा ने तुम्हारी आत्मा के उद्धार के लिये कृपा करके तुम्हारे लिये दुःख की व्यवस्था की है । दुःख में मनुष्य परमात्मा को स्मरण करता है। दुःख के पीछे सुख छिपा रहता है।*

# कुछ विशेष भ्रमात्मक बातें तथा उनका निवारण

## (प्रवचन)

(सिकंदराबाद, उ०प्र०, दि० १२-११-१९६८)

संत मत में वाद-विवाद (बहस करता) मना है क्योंकि इसका सदा मे यही सिद्धांत रहा है. कि सच्चाई वह है जो स्वयं खुल कर आये न कि वह जिसकी घोषणा की जाय । कहावत है "मुश्क आ अस्त कि खुद विगोयद, न कि अतार विगोयद" (भावार्थ - कस्तूरी वही है जी स्वयँ बीले न कि वह जिसको गंधी बताये) । लेकिन फिर भी सत्संगियों को गुमराही से बचाने के लिये कि कहीं वे गलती में पड़ कर अपना समय न खो दें और रास्ते से न हट जायें, कुछ कहना ही पड़ता है और वह भी अपने ही भाईयों से जिन्होंने इस सच्चे रास्ते को क़बूल किये है -

(१) संत मत में कोई मज़हब या धर्म नहीं हे और न किसी मजहब की शाखा है, न किसी का विरोधी है। सबके साथ उसका मेल है । यह सच्ची खुशी, हमेशा हमेशा का सुख और निर्वाण-पद

हासील करने का तरीका है। जितने भी संत दुनियां में आ चुके और जो अब मौजूद है , सबका एक ही तरीक़ा रहा है, सबके जीवन का लक्ष्य भी एक ही रहा है, सबके सिद्धांत भी एक ही रहे हैं और यह हमेशा से है जब से दुनियाँ कायम हैं । इसकी शिक्षा हर भाषा हें है और किसी विशेष भाषा में नहीं । एक पढ़ा लिखा और एक अनपढ़ दोनों के लिये इसमें उन्नति का मार्ग खुला हुआ है, दोनों के लिये कोई अन्तर नहीं है । न इसमें कोई जाति-भेद हैं और न लिग-भेद । हर व्यक्ति चाहे बह पुरुष हो या स्त्री, बुढा हो या जवान, स्वस्थ हो या बीमार, अमीर हो या गरीब सभी इसका साधन कर सकते हैं ।

(२) कुछ मतों का यह दावा है कि उनके गुरुओं ने ही इसको जारी किया है । यह उनकी अज्ञानता है । श्री शिव दयाल सिंह साहव ने इसकी शिक्षा दी तो गुरु ग्रन्थ साहव में भी इसी का शिक्षा है।

*कबीर साहब भी बराबर इसी की शिक्षा देते रहे। हज़रत मौहम्मद साहब ने अपने अनुयायियों को इसी की शिक्षा दी थी। पुराने धर्म ग्रन्थों में भी इसका अनेकों जगह उल्लेख मिलता है। यह अवश्य है कि समय के बदलने के साथ-साथ इसकी भी उन्नति अवनति होती रही है, कभी यह गुप्त रहा है कभी प्रत्यक्ष । परमात्मा का नाम सभी सन्तों ने अनामी बतलाया है और यदि कोई नाम उसका हो सकता है तो सतनाम' हो सकता है। उसके हज़ारों ही नाम हैं। जो नाम प्रेम पूर्वक लिया जाय और जिस नाम से निर्वाण पद या मोक्ष की प्राप्ति हो और जो नाम कमाया हुआ हो वही असली नाम है। इसलिये प्रत्येक अभ्यासी को जो नाम उसके गुरु ने दिया है और जिससे स्वयं उसने आत्मा का साक्षात्कार किया है, वही सच्चा नाम है और उसी का अभ्यास करना चाहिए ।*

*(४) कुछ मतों का यह दावा है कि उनके गुरु ईश्वर के अवतार थे। गुरु नाम ईश्वर का है और जो सन्त सचखण्ड या दयाल देश से आये या वहाँ तक पहुँचे और ईश्वर से मिल कर एक हो गये वे सभी ईश्वर के रूप थे और ईश्वर का रूप हैं। जिसका सहारा लेकर अभ्यासी सचखण्ड तक पहुंचता है वहीं गुरु उसके लिए ईश्वर ईदवर का अवतार है।*

*५) कुछ मत दूसरे मत वालों को बहुत घृणा की दृष्टि से देखते हैं, जैसे हिन्दू, मुसलमान सूफ़ियों को और मुसलमान हिन्दू सन्तों को । वह उनकी कम-वाक़फ़ियत (जानकारी में कमी) पर निर्भर है। उन्होंने पूरी जानकारी नहीं की। कुछ प्रारम्भिक पुस्तक पढ़ कर ही उन्होंने यह सन्तोष कर लिया कि वे उस फ़िलोसफ़ी को खुब जानते हैं। यदि वे आदर की दृष्टि से ध्यान पूर्वक उनके साहित्य का देखें तो असलियत खुल जाय ।*

*(६) एक गलतफ़हमी (भ्रम) आमतौर पर यह भी फैली हुई है कि पहले गुरु के चोला छोड़ने पर दुसरे गुरू का ध्यान करना चाहिये और पिछले गुरु से कोई वास्ता नही रखना चाहिये । जब गुरु उस पवित्र हस्ता का नाम है जो जीते जी ही ईश्वर में लय हो चुका है ती शरीर छोड़ने पर यह कैंसे*

*समझ लिया जाय कि अब वह मौजुद नहीं हैं । चोला छोड़ने पर आत्मा आजादी हासिल करके ईश्वर के रूप में हर जगह मौजूद रहती हैं । इसलिये उसका मरा हुआ समझना गलती है। उसके चोला छोड़ने पर उसा का ध्यान करना चाहिए । हाँ, अगर अभी तक तमोगुणी मन पर बैठक है या सतोगुणी मन पर बैठक तो है किन्त वह स्थायी नही है तो अपने उस बड़ भाई के संरक्षण और आदेशों से सहायता लेते रहता चाहिये जिसकी गुरु इस कार्य के लिये नियत कर गए हैं । और यदि ऐसा कोई भाई न हो तो किसी दुसरे गुरू से सत्संग करके फायदा उठा सकता है।*

# आत्मा की वापसी

## (प्रवचन गुरुदेव)

### (सिकंदराबाद, उ०प्र०, दि० १२-११-१९६८)

इन्सान एक उल्टा दरख़्त है जिसकी जड़ सत खण्ड में है और उसका फैलाव इस दुनियाँ में है. आत्मा में तीन ख़्वाहिशें छिपी हैं - (1) ज़िन्दा रहने की ख़्वाहिश, (2) ज्ञान प्राप्त करने की ख़्वाहिश, तथा (५) आनन्द प्राप्त करने की ख़ाहिश। इन्हीं ख़्वाहिशों की पूर्ति के लिए मनुष्य दुनियाँ की हर चीज़ में फँसता है। उनको अपनाता है और जिनसे ये चीज़ें हासिल होती हैं उनको अपना समझ कर रखने की कोशिश करता है. यह चीज़ ख़ुद आत्मा के अन्दर मौजूद है लेकिन किसी वजह से अज्ञानवश होकर आत्मा अपने असली रूप को भूल गयी है। उसको चेताने के लिए इस दुनियाँ में भेजा गया है। जैसे आदमी अपना अक्स ख़ुद नहीं देख सकता, स्वयं को नहीं देख सकता, बल्कि अपना रूप देखने के लिए उसे शीशे या पानी या किसी ऐसी चीज़ की ज़रूरत होती है जिसमें उसका अक्स पड़े और वह उसे दिखे। इसी प्रकार आत्मा को यहाँ भेजा गया है जिससे उसे अपना ज्ञान हो। अगर वो यहाँ न भेजी जाती तो हमेशा अज्ञान की हालत में पड़ी रहती। लेकिन चैतन्य कभी अज्ञान की अवस्था में पड़ा नहीं रह सकता। इसलिए उसको यहाँ आना ज़रूरी था। यहाँ आकर चीज़ों में उसका अक्स पड़ता है और वह अज्ञानवश अपने स्वरुप को उसमें देखकर इन चीज़ों को अपना समझती है और उनको अपनाती है। लेकिन दुनियाँ की सब चीज़ें नाशवान हैं, एक हालत पर सदा क़ायम नहीं रहतीं, हमेशा बदलती रहती हैं. एक की होकर नहीं रहतीं। जब वह उनसे छिन जाती है तो दूसरे की हो जाती है या उसका रूप बदल जाता है, तब दुखों का होना ज़रूरी है। इस तरह से यद्यपि एक मतलब हल हो गया कि आत्मा सोते से जाग्रत अवस्था में आ गयी लेकिन अज्ञान अभी दूर नहीं हुआ है. दुःख पर दुःख उठाती है. कुछ समझ में नहीं आता, लेकिन मन और माया उसे अपने जाल में फिर फाँस लेते हैं. इस तरह सैंकड़ों जन्म गुज़र जाते हैं।

*सैंकड़ों वर्षों के तजुर्बे के बाद उसको ज्ञान होने लगता है कि उसे जिस चीज़ की तलाश है वह उसका अपना ही स्वरुप है. दुःख का कारण उसका अज्ञान है. असलियत को समझ कर वह मन और माया से अपना वास्ता सिर्फ़ काम निकालने तक रखती है और सुख, शान्ति, ज्ञान और आनन्द के लिए अपने अन्दर की तरफ़ घुसती है. जितना घुसती जाती है उतनी ही ये तीनों चीज़ें बढ़ती जाती हैं और उसका विश्वास पुख़्ता होता जाता है. जितना विश्वास पुख़्ता होता जाता है उतना ही वह और अन्दर घुसती जाती है, और बाहरी वस्तओं से कार्य मात्र के लिए ताल्लुक़ रखती है. इस तरह बतदरीज़ (शनैं शनैं ) पूर्ण रूप से एक दिन अपने अन्दर स्थिति कर लेती है और बाहरी वस्तुओं से ताल्लुक़ तोड़ देती है. यही ज़िन्दगी का मक़सद है।*

*इस मक़सद को हासिल करने के लिए यह ज़रूरी है कि इन्सान किसी की हिदायत (आदेश) में ज़िन्दगी गुज़ारे क्योंकि जब इन्सान किसी भोग में फँस जाता है तो अव्वल तो उसको बुरा नहीं समझता जब तक कि कोई उसके नुक़सान से आगाह न कराये और आगाह हो जाने पर भी उसकी इच्छा-शक्ति इतनी कमज़ोर हो जाती है कि बुराइयों को जानने पर भी और उनकी तक़लीफ़ों को देखते हुए भी अपने आपको उनसे निकाल नहीं सकता। इसलिए ऐसे व्यक्ति की ज़रूरत है जो इस रास्ते पर चला हो और जिसने अपनी आत्मा को इस प्रपंच से निकाला हो. जो हमारा हमदर्द हो, जिसकी इच्छाशक्ति इतनी प्रबल हो कि हमको मदद दे सके। ऐसे व्यक्ति के मिल जाने के बाद ज़रूरी है कि हम अपनी कठिनाइयों को उसके सामने रखें, उससे कोई बात छिपाकर नहीं रखें।*

*हम न मालूम किस-किस योनि से गुज़र कर इस मनुष्य चोले में आये हैं और कई योनियों के संस्कार हमारे अन्दर मौजूद हैं. एक तरफ़ आत्मा है और साथ ही साथ पुराने संस्कार भी हैं। पुराने संस्कार नीचे की तरफ़ ले जाते हैं. हमें नीचे से ऊपर की तरफ़ चलना है. हमारी ज़िन्दगी इन्द्रिय भोगों से शुरू होती है. हमें आहिस्ता-आहिस्ता तज़र्बा करके मन की वासनाओं को छोड़ना और*

आत्मा को इन प्रपंचों से छुड़ाना है और नीचे के अन्तिम मुक़ाम से लेकर आख़िरी चोटी तक पहुँचाना है। यही हमारा असली घर है. इसलिए तज़र्बा करते हुए जो वस्तु हमें नीचे की ओर या बाहर की ओर खींचे उसे छोड़ना ओर जो चीज़ें ऊपर या अन्दर की ओर जाने में सहायक हों उनको साथ लेना होगा. लेकिन इसमें ज़ल्दी नहीं हो सकती. शुरू में चींटी की चाल चलना होगा जब तक कि हम तम ओर रज से निकलकर आज्ञा चक्र के स्थान पर न आ जायें। इससे ऊपर मकड़ी की चाल चलना है जो त्रिकुटी तक पहुँचाती है. जैसे मकड़ी अपने मुँह से तार निकालकर छत से उतरती है फिर धरती पर आकर अपना शिकार करके फिर उसी मार्ग से छत पर चली जाती है. इसके बाद मीन मार्ग यानी मछली की सी चाल चलना होगा ओर यह चाल शून्य अथवा सुन्न के स्थान तक रहती है. उससे ऊपर सतलोक तक विहंगम चाल चलना है, जैसे पक्षी उड़ते हैं. पक्षी पहाड़ की चोटी से उड़कर धरती पर आ जाते हैं. संतों का मार्ग विहंगम मार्ग है।

अब सवाल यह पैदा होता है कि दुनियाँ में रहते हुए हम किसी चीज़ को छोड़कर दुनियाँ का काम कैसे चला सकते हैं ? इसका जबाब यह है कि तमोगुणी वासनाओं को (यानी जो अधर्म की बातें हैं ) उनका त्याग तो करना ही होगा। बिना उन्हें छोड़े गुज़ारा नहीं. रजोगुणी वासनाओं (यानी दुनियाँ के पदार्थों को प्राप्त करने और इकठ्ठा करने की इच्छाओं को ) इतना रखो कि जितने के बिना काम न चल सके. सतोगुणी मन की वासनाओं को (यानी धर्म को ) अपनाओ. उस पर चलने की कोशिश करो. लेकिन उनको भी अपना अन्तिम लक्ष्य मत समझो. उससे भी ऊपर जाओ। अपनी आत्मा का अनुभव करने की कोशिश करो। जहाँ तक वासनायें हैं, चाहे वे अच्छी हों या बुरी, मन उनमें लगा हुआ है। जहाँ कोई वासना न हो, बुद्धि शान्त हो, तर्क-वितर्क न हों। सबमें अपना ही रूप झलके. सबसे प्रेम हो। यही तुम्हारा अपना रूप है. यही ईश्वर प्राप्ति है. इस स्थान पर पूर्ण रूप से स्थिति प्राप्त करो। ज़रूरी काम वक़्त पर किया और फिर अपने स्थान पर आ बैठे. यही तुम्हारी वापसी है, यही अपने असली घर लौटना है।

# मन से सावधान रहो

(दिल्ली, १७ नवम्बर, १९६८)

श्री गुरुदेव विराजमान थे। फरमाया कि मन के धोखे से हमेशा सावधान रहना चाहिये । इस विषय को आपने सिकन्दर और उसके गुरु अरस्तु का उदाहरण देकर यों समझाया :--

सिकन्दर महान आम राजाओं की तरह विलासप्रिय था किन्तु उसके गुरुदंव उसे रोकते रहते थे। ख़बर आई कि अमुक देश के राजा ने सिकन्दर की सैनिक शक्ति के प्रति आत्म-समर्पण कर दिया हैं। अब आवश्यकता इस बात की थी कि स्वयं सिकन्दर वहाँ जाकर उस देश के राज-काज के उचित प्रवन्ध की व्यवस्था करे । उसके गुरुदेव ने आदेश दिया कि वहाँ जाकर उस देश का प्रबन्ध करो । सिकन्दर का मन उस समय कहीं और अटका हुआ था और वह जाना नहीं चाहता था। स्पष्ट मना करने का साहस नहीं था इसलिए उसने कोई बहाना टटोला। उन दिनों उसकी आँखें दुखने आ रही थीं । उसने गुरुदेव से निवेदन किया कि इस समय मेरी आँखें दुखने आ रही, जरा ठीक हो जायें तो मैं फौरन चला जाऊगा। बात आई गई हुई। आखें भी ठीक हो गईं परन्तु सिकन्दर न गया । गुरुदेव ने फिर पूछा किन्तु सिकन्दर ने कोई न कोई बहाना बनाकर फिर टाल दिया। उन्हें कुछ शुबहा सा हुआ जब उन्होंने पता लगाया तो मालूम हुआ कि सिकन्दर किसी सुन्दरी स्त्री के फेर में पड़ा हुआ है जिसे छोड़कर वह जाना नही चाहता । उन्होंने सिकन्दर को बुलाकर आज्ञा दी कि वह तुरन्त चला जाय। चूंकि गुरुरेव का हुक्म था इसलिये जाना जरूरी था।

वह उस सुन्दरी से बिदा लेने गया। बड़ा उदास था। सुन्दरी ने उदासी का कारण पूछा तो उत्तर मिला कि गुरुदेव का हुक्म टाल नहीं सकता और तुम्हें छोड़ते बहों बनता । उस सुन्दरी ने कहा कि तुम चिंता मत करो, इस समस्या को मेरे लिये रहने दो मैं सब ठीक कर लुंगी । तुम केवल इतना करो कि जिस उद्यान में गुरुदेव रहते हैं उसके चोर दरवाज़े की चाबी मुझे दे दो।

सुरुदेव प्रातः तीन चार बजे उठ जाते थे और छत पर बैठकर माला जपते और पूछा करते थे। अगले दिन प्रातःकाल जब वे पूजा करने बैठे तो उनके कानों में बड़ी मधुर संगीत ध्वनी सुनाई दी। उसमें आकर्षण था किन्तु वे सुनकर भी अपनी पूजा में तन्मय रहे। दूसरे दिन फिर बही मनमोहक संगीत सुनाई दिया। कुछ आकर्षण बढ़ा और पूजा में पुरी तरह तस्मयता नहीं आई । तीसरे दिन ऐसा लगा कि यह गाने की आवाज तो बहुत पास से आ रही है। मन में आया कि जाकर देखें कि कौन गा रहा है। पूजा छोड कर गये । देखा, एक अत्यन्त सुन्दर स्त्री बडी तन्मयता से गाना गा रही है रही है. कपड़े भी इधर-उधर बिखर गये हैं, बे-हिजाब (अर्ध नग्न ) है। कई दिन ऐसा होता रहा । एक दिन वे नीचे उतर आये और उसके निकट खड़े हो गये। सुन्दरी ने देखा तो चौंक गई हो। कपड़े सम्भाल कर बोली-' हुजूर कैसे ?

हमारी भी तबियत चाही कि तुम्हारा गाना सुने, इसलिए चले आये।"

"हुजूर ने मुझे ही क्यों न बुला लिया ?"

अरस्तू उसके संगीत तथा उसकी सुन्दरता से प्रभावित हो चुके थे । लगता था कि उनका तामसी मन जागृत हो उठा था। उन्होंने उस सुन्दरी को आने के लिये कहा । उसने उत्तर दिया कि मेरी एक शर्त है । पहले आप घोडा बनें और मैं आपकी पीठ पर बैठु । अगले दिन अरस्तु घोडा वने और वह उनकी पीठ पर चढ गई । दाढ़ी पकड़ कर टिक-टिक करके हाँकने लगी। घुटनों के बल चला कर महल में ले गई। सिकन्दर को उसने पहले ही से सब कुछ बता दिया था और उसे महल में दरवाज़े के पीछे छिपा रखा था । अन्दर घुसते ही सुन्दरी ने इशारा किया। सिकन्दर निकल आया और झुक कर अपने गुरुदेव को सलाम किया। अरस्तु महान सन्त थे । न मालूम सिकन्दर को उपदेश देने के लिये ही उन्होंने यह खेल रचा था। उन्होंने सिकन्दर को सम्बोधित करके कहा- "तू अब भी न

*सम्भला ? देख मेरी सारी रियाज़त (तपस्या) खाक में मिल गई। जब मेरा यह हाल हुआ तो तेरा क्या हाल होगा ?"*

*इस तरह अरस्तु ने सिकन्दर को नसीहत की थी कि कुसंग का मन पर क्या प्रभाव पड़ता है। जहाँ ईश्वर वसता है वहाँ शैतान भी पास ही रहता है । जहाँ निगाह ईश्वर की तरफ़ से हटी और शैतान ने हमला किया ।*

*बाहम लेला ओऔं-मजन् एक हो महफिल में रहते हैं ।*
*ताज्जूब है किसी ने उनको देखा ओर न पहिचाना ।*
*वो होकर साफ बेपर्दा हरेक महफिल में रहते हैं ॥*

*अपने दिल को टटोलते रहो । देखो कि कुछ ग़रज़ है ? कोई जूं तो नहीं है, कोई जू नहीं है तो लीक होगा । उसे मार दो । जब कोई जूँ या लीक 'होती है तो शरीर में बेचैनी रहती है और जब उसे मार देते हैं तो चैन आ जाता है। अपने मन को टटोलो कि कोई ख्वाहिश तो नहीं है ? अगर नहीं है तो यह बेचैनी क्यों है जरूर कोई न कोई ख्वाहिश है । अगर ख्वाहिश नहीं है तो उसका बीज है यानी जुए नहीं हैं मगर लीक है। उसको मार दो । अगर तुम में कोई बुराई है भी तो फिक्र मत करो । अपनी आत्मा को ईश्वर मे लगाये रखो । मन में खुद की जान नहीं है । आत्मा को साथ लेकर और उसी से शक्ति लेकर सब काम करता है । जब आत्मा ऊपर को लगी रहेगी तो तन शक्ति कहाँ से लेगा ? मन में कोई बुराई आये तो हटाने की कोशिश में लगने की बजाय अपनी Attention (सुरत) को ईश्वर के चरणों में लगा दो । यदि कोई बुराई होनी ही है और बदी है तो होकर ही रहेगी । संस्कार हम इसलिये जमा करते हैं कि हम उस बुराई को बुरा ख्याल करके ऐसा करते हैं इसलिये ज़िम्मेदार बन जाते हैं । अपने आपको ईश्वर के चरणों में लवलीन रखों और इस पर भी यदि कोई*

*बुराई accidental (अकस्मात्) हों जाय, वह होनी ही बदी है । उसमें उलझो मत । जो कुछ हो चुका उस ख्याल को पकड़ कर अपना ध्यान ईश्वर या गुरु के चरणों में लगाये रखो तो वह खुद-ब-खुद दूर हो जायगा ।*

*जो बुरा या भला हमने किया है उसका फल भी हम भोगेंगे । हम अपने आपको उसका कर्त्ता समझते हैं तो हम उसके जिम्मेदार हो गये । इन सबसे ऊँचे उठो। अपने आपको ख्याली तोर पर हमेशा गुरु चरणों में लगाये रखो और उसी ख्याल में महब (डूबे) रहो। अब जो कर्म अपने आप हो गया वह हो गया। ऐसा तो होना ही था । मन गुरु के चरणों में लगा है तो उसे लगा रहने दो । उस वक्त उसे हटाकर अच्छाई या बुराई की तरफ़ लगाओगे तो वह और मजबूती के साथ उस बुराई भलाई को करेगा। अपने आपको ईश्वर के ध्यान में इतना तल्लीन कर दो कि हर वक्त उसी में लगे रहो। बुराई भलाई का ख्याल अगर आता है तो उसमे मत फंसो। इस तरह अभ्यास करते करते मन स्वयं शांत हो जाएगा।*

# मनुष्य का सर्वोच्च कर्तव्य क्या है ?

(नई दिल्ली, दि० २-११-६८)

परमार्थ का मतलब यह है कि हमारी मौजूदा ज़िन्दगी ख़ुशी की ज़िन्दगी हो जाये, हमें आनन्द ही आनन्द हो और प्रेम ही प्रेम हो। इसका इलाज सन्तों के पास है। वे कहते हैं कि इस शरीर की मालकिन आत्मा है, जिसकी अधीनता में बुद्धि काम करती है। मन बुद्धि के अधीन है. आत्मा सबके ऊपर है। वह सबसे काम लेती है और सबको शक्ति देती है और उसी शक्ति से बुद्धि, मन और इन्द्रियाँ संचालित हैं. लेकिन हो रहा है इसका उल्टा। इन्द्रियाँ अपनी मनमानी करती हैं और विषयों में घूमती हैं, मन का कहना नहीं मानती।

मन अपनी ख़्वाहिशात में मस्त रहता है और बुद्धि अपने विचार उठाया करती है। ये तीनों मिलकर आत्मा के ऊपर सवार हैं। उसी से शक्ति लेते हैं और उसी पर सवार हैं. उलटी गंगा बह रही है। अपने आपको मास्टर बनाओ. आत्मा को बुद्धि, मन और इन्द्रियों के फन्दों से निकालो, ज़िन्दगी सुखमय हो जायेगी। लेकिन जब तक हमारी बुद्धि, मन और इन्द्रियाँ हमारे क़ाबू में नहीं हैं तब तक सुख कैसे प्राप्त होगा ? सन्तों का अभ्यास यह है कि हमारे अन्दर जो इस तरह की अनुशासनहीनता (indiscipline) हो रही है उसको अनुशासन (discipline ) में ले आओ। सबको क़ाबू में करो। ज़िन्दगी शान्तिमय (peaceful ) हो जायेगी। यही सारा साधन है।

सन्तों का तरीक़ा रूहानी (आत्मिक ) है. जितने अभ्यास इनके हैं उन सब में आत्मा को मन, बुद्धि, और इन्द्रियों के फन्दे से न्याश करते हैं। आत्मा आनन्द रूप है, प्रेम रूप है, उसको मन चूस रहा है, उससे उसको निकालना है. गुरु कौन है ? ईश्वर. गुरु जिस्म को नहीं कहते. जिस्म के अन्दर जो परमात्मा निवास करता है, वही गुरु है. जिस्म तो बाहरी स्वरुप है. लक्ष्य हमारी वह आदि शक्ति है जो विश्वात्मा (Universal soul ) है. अपनी आत्मा को न्याश करके उसे विश्वात्मा (Universal

soul ) में लय कर दो। कृष्ण भगवान कहते हैं - " हे अर्जुन। सब धर्मों को छोड़कर मुझको समर्पण (surrender ) कर। मैं तुझे माया के सब प्रपंचों से निकालकर भवसागर से पार कर दूँगा." गुरु के मन से मन मिल जाये, जो गुरु के ख़्याल में आये, वह तुम्हारे ऊपर भी उतर जाये, जो गुरु चाहे, वही तुम करो, यही समर्पण (surrender ) है। सूफ़ियों में इसको 'निस्बत' कहते हैं। मन इन्द्रियों में बिलकुल शान्त नहीं होता, न दुनियाँ की वासनाओं में। जब सत पर आ जाता है और गुरु के चरणों में लग जाता है, तब शान्त होता है. जब यह समर्पण (surrender ) पूर्ण हो जाता है तब मन शान्त होकर एक तरफ़ बैठ जाता है, आत्मा अपने प्रीतम परमात्मा का दर्शन करती है और सब जगह, सब वस्तुओं में, और सब प्राणियों में उसी प्रीतम का रूप निहारती है।

संतमत का लक्ष्य और तरीक़ा यह है कि अपने तमाम निर्धारित कर्तव्यों (duties) को पूरा करो। दुनियाँ का तजुर्बा करते हुए एक चीज को छोड़ते चलो। बन्धनों को तोड़ते चलो और आत्मा को सब बन्धनों से मुक्त करो। दुनियाँ की सब duties (कर्तव्य) पूरी करो लेकिन अपनी foremost Duty (प्रमुख कर्तव्य) को कभी मत भूलो और वह यह है कि अपनी आत्मा को मन से अलग कर के Universal Soul (विश्वात्मा) में मिला दो और आनन्दमय जीवन व्यतीत करो।

जिन बातों की धर्म शास्त्र आज्ञा नहीं देता उनसे बचो, अपने आप पर रोक लगा दो। जैसे परस्त्री के साथ अकेले मत बैठो। जो बातें मर्दों के लिए हैं वो औरतों के लिए भी हैं। अगर कभी अवसर पड़े तो किसी को साथ रखो। तुम कितने ही धर्मात्मा हो लेकिन मन पर कभी भरोसा नहीं कर सकते। यह बड़ा धोखेबाज़ है। कोई दावे के साथ यह नहीं कह सकता कि उसने मन को जीत लिया है। जिसे ईश्वर ने अपना-लिया है वही मन के धोखे से बच सकता है। बड़े-बड़े ऋषि मुनि और तपस्वी इसके धोखे में आकर मारे गये। मन में बीज रूप से इच्छाएं बनी रहती हैं और जब वातावरण उनके अनुकूल होता है तो वे उभर आती हैं और इन्सान को फँसा लेती हैं और अपना रूप

धारण कर लेती हैं । जब सब ख्वाहिशात मन से, शरीर से शौर बीज रूप से निकल जायें तब समझो कि अब कोई ख्वाहिश बाक़ी नहीं है । पेड़ के पत्त , टहनियाँ और तना काट देने से यह मत समझो कि पेड़ मर गया। अभी जड़ें बाक़ी हैं और वे चारों तरफ़ जमीन में गहरी घुसी हुई हैं ।

अनुकुल वातावरण मिलते ही उनमें फिर पत्ते और डालियाँ निकल आयेंगी । किसी आदत को छोड़ना हो तो उससे परहेज करो और अपने आपको उससे दूर रंखो । शराब पीने की आदत है तो शराब को दूर रखो, ऐसी जगह रखो कि तुम बोतल उठाना भी चाहो तो तुम्हारा हाथ वहाँ न पहुँचे। स्त्रियों का पर्दा ज़रूर होना चाहिये. इसमें बहुत फ़ायदे हैं। पर्दा आँखों का होता है पुरुषों के साथ बेहयाई से मिलना, आजादी से बातचीत करना, खबे से खबा मिलाकर चलना, यह सब बेहयाई है। पर्दे के हम हामी नहीं हैं लेकिन आखों का पर्दा जुरूर चाहिये । जो इस तरह का पर्दा नहीं रखते उसका बुरा नतीजा उठाते हैं ।

आदमी जब बुराई की तरफ़ चलता है, जो कि कुदरती है (क्योंकि बाहर की तरफ़ जाने या नीचे की तरफ़ जाने में आसानी है) तो वह दुःख उठाता है । इस तरह दुःख पर दुःख उठाने के बाद जब एक मुद्दत में उसको तजुर्बा हो जाता है कि अधर्म पर चलने का नतीजा दुःख है तो वह धर्म पर चलने की कोशिश करता है। यह तकलीफ ही उसको शिक्षा देती हैं और सही रास्ते पर लाती हैं। लेकिन बुराइयों को जानने पर भी वह बुराई से बच नहीं सकता, बार बार उसका शिकार होता है क्योंकि बुराई पर चलते रहने से इन्सान की इच्छा शक्ति (Will Power) कमज़ोर हो जाती है। जब वह मजबूर हो जाता है और कोई रास्ता नहीं देखता और अपने आपको लाचार पाता है तो ईश्वर की तरफ़ झुकता है। शुरू में यह झुकाव असली नहीं होता, कभी होता है फिर हट जाता है, लेकिन वक्त आने पर सच्चे दिल से ईइवर की शरण लेता है। ईश्वर, जो प्रेम का भण्डार है, उसकी इस पुकार

*को सुनता है और अपने किसी अंश को गुरु के रूप में उसके पास भेज देता है जो उसको सहायता देता है, अपनी इच्छा-शक्ति (Will Power) प्रदान करता है और डूबते-डबते कुछ सहारा मिलने लगता है ठीक उसी तरह जैसे डूबता हुआ आदमी किसी का सहारा लेकर खड़ा होने लगता है । गुरु उसको धर्म पर चलने की राह दिखलाता है जिससे उसकी खोई हुई इच्छा-शक्ति फिर एकत्रित होने लगती है। यही Concentration (एकाग्रता) है। गुरु से शक्ति लेकर शिष्य अपने मन के बहाव को रोकने लगता है, उसका मुक़ाबला करने लगता है और आहिस्ता-आाहिस्ता मन पर विजय पाता है। आत्मा का साक्षात्कार होने लगता है और बह ईश्वर के समीप होने लगता है। ईश्वर उसका सहायक हो जाता है और उसकी देख भाल खुद करने लगता है। अब वह मुरीद से मुशद बन जाता है और बिल्ली के बच्चे की तरह फिर परमात्मा उसको अपनी दरण में ले लेता है। यही दर्जा मक़बुल (अपनाया हुआ) का है। बड़ा खुश-किस्मत है वह आदमी जिसको ईश्वर इस तरह से क़बूल करले । अब खुद ईश्वर उसकी देखभाल करता है। अब उसे कुछ करना धरना नहीं है । वह इसका है, यह उसका है ।*

*हम सब उसके प्यार के ग्राहक हैं लेकिन उसने अभी क़बूल नहीं किया है । इसलिये बुराइयों में बह जाते हैं। जब अभ्यास करके दसवें द्वार पर पहुँचते है तब वह दर्शन देता है। तभी असली प्यार होता है और हम' उसके मक़बूल (प्यारे पुत्र) Beloved Son हो जाते हैं और जब वह अपनाता है तो हम सचखण्ड में पहुँच जाते हैं ।*

*दसवें द्वार पर प्रकाश रूप में दर्शन होते हैं जहाँ आनन्द का अथाह सागर है, प्रेम ही प्रेम हैं । Mental eyes (अन्तनेंत्रों) से उसके दर्शन होते हैं । जिस साधक को ऐसे दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हो जाय उसकी हर तरह से ईश्वर रक्षा करता है । उसकी कोई ख्वाहिश बाक़ी नहीं रहती । अब यहाँ पर असली मायने में यह उसका पुत्र है और वह उसका पिता हैं । उसकी खुदी, egoism, अहंकार, और अनानियत सब ख़तम हो जाती हैं। वह ईइवर में लय हो जाती हैं । अब वह कर्त्ता नहीं है, ईव्वर ही कर्ता हैं।*

# सच्चा-प्रेम

(गाजियाबाद, दि० १-१२-१९६८)

ईश्वर से सच्चा प्रेम होना चाहिए। सच्चा प्रेम केवल आत्मा के द्वारा होता है। मन का प्रेम बदला चाहता है और बदलता रहता है। हम ईश्वर से प्रेम इसलिए करते हैं कि हमारी दुनियाँवी ख्वाहिशें पूरी हों, हमें दुनियाँ में धन, सम्पत्ति ऐशो आशाम (सुख चैन) मिलें, वगैरा वगैरा। यह मन का प्रेम है। आत्मा का प्रेम बदला नहीं चाहता, जॉनिसारी (आत्म-बलिदान, जी जान से न्यौछावर हो जाना) चाहता है। सब कुछ दे देना चाहता है लेकिन लेना कुछ नहीं चाहता। यह प्राकृतिक प्रेम है जो अंश को अंशी से होता है। अर्थात आत्मा परमात्मा की अंश है और इस नाते वह अपने अंशी से स्वाभाविक प्रेम करती है। मन के प्रेम की एक पहचान यह भी है कि वह जिसे प्रेम करता है उसे किसी दूसरे की प्र मं करते नहीं देख सकता।

हमें अपने गुरुदेव से बहुत प्रेम था। कुछ दिनों हमारा यह नियम रहा कि रोजाना जब हम उनके दर्शन करने जाते थे तो थोड़ी सी मलाई ले जाते थे। फ़तेहगढ़ की मलाई मशहुर थी। उनके सामने रख देते थे और वह कृपा करके प्रेम-पूर्वक उसे खा लेते थे। उन्हीं दिनों उनके भतीजे उनके घर आये। अगले दिन जब हम मलाई ले गये और उनके सामने रखी तब उन्होंने उसे स्वयं न खा कर अपने भतीजे की तरफ़ सरका दी। हम सोचने लगे कि हम तो इनके लिए लाए थे और इन्होंने दूसरे को दे दी। कई दिन तक यही सिलसिला चलता रहा। शुरू में हमें उनके भतीजे से ईर्ष्या हुई। फिर हमने यह सोचा कि जब यह उन्हें प्यार करते हैं तो फिर हम भी उन्हें प्यार करें। अगर पिया दूसरे को चाहता है तो हमारा भी यह फ़र्ज है कि हम भी उसे प्यार करें।

*अगले दिन से हम दो जगह मलाई लाने लगे और एक गुरुदेव के सामने और दूसरी उनके भतीजे के सामने रख देते थे । कहने का मतलब यह है कि अपनी तरफ़ देखो और अपने प्रेम को शुद्ध और बेग़रज़ (निस्वार्थ) बनाते चलो । तुम्हें क्या मतलब कि बह किसको प्यार करता है और किसको नहीं करता है।*

*तुझे सामने बेठा के मैं, यादे-खुदा करूँ।*
*तू मुझे देखे न देखे, में तुभे देखा करूँ।।*

*सच्चे प्रेमी ईश्वर से कुछ नहीं चाहते । तेरा याद बनी रहे । दुःख मुसीबत आते रहें जिससे ईश्वर की याद बनी रहे । जो ईश्वर को ज़िन्दगी, ज्ञान, और आनन्द की प्राप्ति की ग़रज़ से पूजते हैं वे भी एक तरह से खुद-गरज़ (स्वार्थी) हैं। तुम अपने से पूछो कि ईदवर या गुरु को क्यों प्यार करते हो ? जवाब मिले कि हम नहीं जानते । पूछो कि क्या चाहते हो ? और जवाब मिले, 'कुछ नहीं चाहते । यही सच्चा प्रेम है ।*

*एक फक़ीर ईश्वर का बहुत प्यारा था। फरिश्तों ने ईश्वर से कहा कि यह आपको बहुत प्यारा है, इसे कुछ करामातें (चमत्कार, सिद्धियाँ) बख्श दीजिए। ईश्वर ने कहा कि हमसे तो वह कुछ लेता नहीं है, हम तुम्हें ही यह काम सुपुर्द करते हैं, हमारी तरफ से तुम्हें पूरा अधिकार है कि जो चाहो सो दो। फरिश्ते फक्रीर के पास गये और पूछा कि ईश्वर ने हमें भेजा है। वह तुमसे बहुत खुश है और तुम्हें कुछ देना चाहता है। तुम क्या चाहते हो ? फ़क़ीर ने कहा कि मैं कुछ नहीं चाहता । उन्होंने कहा कि क्या ऐसा हो जाय कि तुम जिस बीमार पर हाथ रखे दो वह अच्छा हो जाय, अगर कहीं अकाल पड़े तो तुम्हारे हुक्म से वहाँ हरियाली और खुशहाली हो जाय, वगैरा वगैरा । फकीर ने साफ मना कर दिया और कहा कि मैं कुछ नहीं चाहता । फ़रिश्ते लौट गए और ईश्वर से सब हाल कहा ।*

*ईश्वर ने कहा कि मैं पहले ही कहता था कि वह कुछ नहीं चाहता, लेकिन मेरा यह आशीर्वाद है कि फ़क़ीर जहाँ जयेगा वहीं बरकत होगी । आप देख लीजिए कि ईश्वर के सच्चे प्रेमी भक्त जहाँ जाते हैं वहाँ बरकत ही बरकत होती है ।*

*अगर ठोकरें भी मारे तो भी गुरु का दरवाज़ा छोड़कर मत जाओ । हम बुरे हैं, रोते हैं, गिड़गिड़ाते हैं कि हे प्रभो, हमारी बुराइयाँ दूर कर दो, इसलिए नहीं कि यह बुराइयाँ हैं बल्कि इसलिये कि आप इनसे खुश नहीं हैं। और अगर आप इनसे खुश हैं तो कितनी ही बुराइयाँ हमारे अन्दर भरी रहें हमें उनसे क्या ? जिसमें आप खुश हों वही हो ।*

*वह मालिक न मिले, ऐसा तो हो नहीं सकता । मिल कर ही रहेंगे । तेरी मर्ज़ी ऐसी ही है कि हम बुरे कहलायें तो यही अच्छा है । लेकिन अगर तू चाहे कि हम तुझे छोड़ दें, ऐसा तो हो नहीं सकता । ख़्यालात आया करें, सन्ध्या, पूजा चाहे हो या न हो, बस एक तेरा ख्याल न छूट जाये ।*

*यार की गलियों में क्योंकर, यार जाना छोड़ दे ।*
*किस तरह बुल बुल चमन' से आशियाना? छोड़ दे ।*
*अब्र बारा' छोड़ दे, बिजली तंड़कनां छोड़ दे।*
*रूह क़ालिब' छोड़ दे या जिस्म को जां छोड़ दे ।*
*में न छोडूंगा तुझे चाहे ज़माना छोड़ दे।*

*सच्चा प्यार वह है जिसकी वजह समझ में न आये लेकिन बगैर उसके रह भी न सके । तू न सही तेरा ख्याल ही सही ।*

# विश्वव्यापी-प्रेम

## (दिल्ली, १७-११-६८)

प्रेम चाहे किसी दुनियाँदार से हो या ईश्वर से, उसमें कोई ग़रज़ नहीं होनी चाहिए । जहाँ ग़रज़ होती है उसे प्रेम नहीं कहते । वह सौदेबाज़ी है । गुरु से प्रेम करो और कुछ न कुछ चाहो। अपने मन से पूछो कि क्या चाहते हो और जवाब मिले कि कुछ नहीं चाहते, हमारा प्रीतम खुश रहे बस यही चाहते हैं। हमारा रास्ता प्रेम का रास्ता है। प्रेम में जहाँ ग़रज़ शामिल होती है वहीं रास्ता बन्द हो जाता है ।

Will Power (इच्छा शक्ति) आत्मा की गिज़ा है। जिसमें आत्म-बल ज़्यादा होता है वही सच्चा भक्त हो सकता है । वह जिसे प्यार करता है उसके सामने दूसरे को नहीं देखता । जब कोई* ग़रज़ आ जाती है तब वह प्यार गन्दा और दूषित हो जाता है। जो आदमी बिना ग़रज़ के प्यार करता है, अपने बेटे-बेटी और दूसरों के बेटे-बेटी को बिनाDistinction (भेद-भाव) के सबको एक-सा प्यार करता है, कोई फ़र्क़ नहीं समझता और जिसक प्यार जीव-जन्तुओं, वनस्पति इत्यादि सबके लिये समान हूँ उसी के दिल में परमेश्वर बसता है । यही प्यार ईश्वरीय कहलाता है, यही Universal love (बिश्वव्यापी-प्रेम) है । इन्द्रियों का प्यार, मन का प्यार और आत्मा का प्यार यह तीन तरह के प्यार हैं। इन तीनों में से जो चीज़ Common (सब में) है उसको रख लो और बाक़ी सब निकाल दो । क्या रह जायेगा ? प्यार ही प्यार रह जायेगा।

प्रेम या मौहव्वत क्या है ? जहाँ नफ़रत न हों, वासना न हो, कोई इच्छा न हो । जहाँ देखने की, चिपटाने की या छूने की चाह है वह इन्द्रियों का प्यार है। हमारे मन की इच्छायें जिससे पूरी हों वह मन का प्यार है । जहाँ न ख्याल है न ग़रज़ है न और कुछ, सबका भला ही भला चाहता है वही सच्चा प्यार है। ऐसे प्रेम में प्रमी ईश्वर को अपने से अलग नहीं मानता हैं। जहाँ ऐसा प्यार है वहन तकदीर और तदबीर कुछ नही चलती वह जो चाहे सो कर सकता हैं। यही रूहानियत हैं। Universal

***love, Love all without distinction (विश्वव्यापी-प्रेम, सबको ऐसा प्रेम करो कि कोई भेद भाव न रह जाय) । यह वही कर सकता है जिसने अपनी आत्मा का दर्शन कर लिया है ।***

# संत करहिं भवसागर पारा

( बक्सर, बिहार, ता० २१-१-६९)

जीव जब से संसारी बना तबसे उसे एक के बाद दूसरी चाहें सदा घेरे रहती हैं। एक चाह तो पूरी होने नहीं पाती, दूसरी घर कर लेती है, और हम उन चाहों के पीछे दौड़ने लगते हैं। इसी तरह यह जीवन चक्र चलता रहता है। जो चीज़ हमारे मन के अनुकूल आ जाती है उसमें हम सुख और जो प्रतिकूल आ जाती है उसमें दुःख का भान करते हैं। सुख दुःख का आना -जाना ही भौतिक जीवन है। दरअसल हम चाहते क्या हैं ? इस दुनियां में हमारे आने का ध्येय क्या है ? हम चाहते यह हैं कि हमें पूर्ण जीवन मिल जाये जहाँ मौत का ख़ौफ़ न हो, पूर्ण ज्ञान मिल जाये, जहाँ अज्ञान का नामोनिशान (लेशमात्र) न हो और पूर्ण आनन्द प्राप्त हो जाये जहाँ लेशमात्र भी दुःख न हो। यही सत- चित-आनन्द कहलाता है। यह सारे गुण आत्मा में हैं, पर सिर्फ़ किसी हद तक हैं। परमात्मा पूर्ण सत-चित-आनन्द हैं। इसकी कोई सीमा नहीं है, असीम है। हम limited (ससीम) हैं। हम limited (ससीम) को Unlimited (असीम) में मिला देना ही हमारा परम कर्तव्य है। आत्मा परमात्मा के चरणों से अलग होकर लोक-लोकान्तर में घूमती हुई कई कोषों का चक्कर लगाते-लगाते यहाँ आयी और अपने ऊपर कोषों का पर्दा भी लायी। अनन्त काल से इस माया देश में भ्रमण करते करते वे परदे मोटे होते चले गए। अब यह दशा हुई कि वह इन पर्दों में ढ़क जाने से ग़ाफ़िल (भ्रमित) हो गयी और अपनी असलियत को ही भूल गई जैसे एक गडरिये ने शेर के नवजात शिशु को उठाकर भेड़ों के बीच में रख दिया। शेर का बच्चा भेड़ों के बीच में रहते-रहते अपने को भेड़ समझने लगा और उन्हीं जैसा व्यवहार करने लगा। जब वह बड़ा हुआ तो एक दिन घास चरते-चरते जंगल में चला गया। वहाँ एक दूसरे शेर से मुलाक़ात हो गयी। चूँकि वह अपनी असलियत को भूल गया था,उसने वहाँ से भागना चाहा। तब उस शेर ने उसे समझाया और नदी के किनारे ले जाकर पानी में उसका रूप दिखा कर कहा - " भाई, तुम तो मेरी जाति के हो, शेर हो, तुम कैसे अपने स्वरुप को भूल गए हो ?" शेर के बच्चे को अपनी याद आयी और वह उस शेर के साथ उछलता -कूदता जंगल में चला गया और फिर वापस नहीं लौटा। यही हाल हम सबका है। हम भी अपने को भूल कर उस माया देश में चक्कर लगा रहे हैं। कोई टिकाव नज़र नहीं आता। इसका कारण एकमात्र यही है कि हमारा रुझान केन्द्र की तरफ़ से हटकर विपरीत

दिशा में पड़ गया है। मन प्रबल बन गया है और आत्मा दब गयी है। हमारा मन दुनियाँ की छोटी-छोटी चीज़ों में रस लेता और सुख मानता है। परन्तु सच्चा सुख तो आत्मा में है।

विषयों का आनन्द क्षणिक होता है और आत्मा का आनन्द स्थायी होता है। बल्कि जो भी आनन्द हम महसूस करते हैं वह आत्मा से बुद्धि व मन के द्वारा छन कर आता है - अतः वह छाया मात्र ही है। चन्दन के पेड़ के आस-पास के बृक्ष भी उसकी महक के प्रभाव से थोड़ा बहुत महकने लगते हैं पर वे चन्दन के बृक्ष नहीं कहे जा सकते। आत्मा का असली रस व आनन्द तभी मिल सकेगा जब बीच से बुद्धि व मन के परदे हट जाएँ। बाहरी वस्तुओं से जो भी आनन्द प्राप्त होता है दरअसल वह उन वस्तुओं का नहीं होता बल्कि वह हमारे अन्दर से हमारी आत्मा से ही आता है। उदाहरण के लिए भोजन को ही ले लें। हमें जब तक भूँख लगी होती है मामूली से मामूली खाना भी हमें अच्छा लगता है। जब भूँख शान्त हो जाती है तो अच्छे से अच्छा खाना भी बुरा लगने लगता है। अगर ज़बरदस्ती खा लें तो वह खाना उल्टा कष्टकारी बन जाता है। इन्सान बिस्तर में पड़ा-पड़ा कराहने लगता है। कहाँ रहा भोजन का सुख व आनन्द ? यदि भोजन में ही सुख व आनन्द होता तो ऐसा कदापि नहीं होना चाहिए था। आरजी आनन्द जो मिल रहा था वह तो भूख की वजह से था। यही हाल सन्तान का भी है. जब तक सन्तान नहीं होती हम परेशान रहते हैं और देवी देवताओं की मनौती मनाते हैं। कहीं सन्तान हो जाती है तो हम ख़ुशी में आसमान सर पर उठा लेते हैं और पुराने दुःख भूल जाते हैं। पर अगर बच्चा बीमार पड़ गया तो डाक्टरों, हकीमों के पास भागते नज़र आते हैं। यही हाल हर दुनियावी पदार्थ का है। अतः चीज़ तो वस्तुतः है कहीं और हम देखते कहीं और हैं। कोई इसका परिचय कराये तभी हमारी आत्मा निज घर की तरफ लौट सकेगी।

दुनियाँ और दीन एक दूसरे के opposite (विपरीत) हैं। आत्मा मन बुद्धि के पर्दों में छिपी हुई है जब तक ये परदे नहीं हटते आत्मा का ज्ञान नहीं हो सकता। आत्मा की दृष्टि से सुख व दुःख मन की वासनाओं के अनुरूप आपेक्षिक है। आत्मा में सिर्फ़ ईश्वर की कामना है, अतः वह कभी किसी भौतिक पदार्थ की तरफ नहीं जाती। हमें दुनियाँ में रह कर दुनियाँ के व्यवहार तो करने ही पड़ेंगे। इससे फ़ुर्सत नहीं है। वासनायुक्त किया गया व्यवहार बन्धन का कारण होता है। जहाँ फलासक्ति का अभाव है वह कर्म कतई बन्धन पैदा नहीं कर सकता। फल को न छोड़कर फलासक्ति को छोड़ना ही हमारा फ़र्ज़ होता है। आत्मा जितनी ही मन से न्यारी होती है हमारा लक्ष्य

*भी उतना हे क़रीब होता जाता हैं। अतः मन, जो हर चीज़ में रस लेता हैं, नई चाहें उठा कर हमें नचाता फिरता हैं, उस मन को को काबू में करने का साधन पहली सीढ़ी हैं। इसका सीधा उपाय यह हैं कि हम विषयों का त्याग करें, वीत-रागी बनें और बीच के रास्ते पर आ जावें, फिर अंतर में घुसें क्योकि आत्मा हमारे अंतर के अंतर में हैं। मन दब भले ही जाये, यह जल्दी मरता नहीं, कुकर -ब्यौंत किया करता हैं। मन को सिर्फ़ वही मार सकता हैं जो अंतर की चढ़ाई कर चुका होता हैं. संतों ने इसका सरल और ज़ल्द असर करने वाला और पूर्ण रास्ता निकला हैं और वह यह हैं कि किसी ऐसे व्यक्ति को ढूढो जो अपने आपको ईश्वर में लय कर चुका हो। ऐसे व्यक्ति का प्यार ईश्वर से प्यार होता हैं। ऐसे व्यक्ति का मन ख़त्म हो चुका होता हैं। उसे इस अवस्था में दुनियावीं इच्छाएँ फुज्ला (विष्ठा ) नज़र आती हैं। ईश्वर का प्यार मिल जाने पर आत्मा खुद मन से न्यारी हो जाती हैं। आत्मा पर से जो आनन्द आता हैं भोगता तो उसे मन ही हैं, लेकिन समझता हैं कि यह आनन्द विषय में ही हैं। जैसे कुत्ता जब हड्डी चूसता हैं तो उसको चबाने से उसके मुँह से जो खून निकलता हैं उसे चूस कर वह यह समझता हैं कि ख़ून उस हड्डी में से मिल रहा हैं। वह यह नहीं समझ पाता कि ख़ून उस हड्डी में से नहीं बल्कि खुद उसी का हैं। इसी तरह हम भी अज्ञानी बने हुए हैं और विषयों के आनन्द को ही आत्मा का आनन्द समझते हैं।*

*ईश्वर ने अत्यंत कृपा करके हमें मनुष्य शरीर दिया हैं। हमारा फ़र्ज़ हैं कि हम इसे ईश्वर की अमानत और धरोहर समझ कर इससे सबकी सेवा करें, सत का जीवन अपनायें, धर्म पर चलें और अपने आपको संत-सद्गुरु के हवाले कर दें। मोक्ष तो संतों के सन्मार्ग में जाने से ही मिल जाती हैं परन्तु वगैर मन के शुद्ध व निर्मल हुए स्थायी आनन्द की प्राप्ति नहीं होती। वैसे तो ईश्वर कृपा हर समय, कण -कण पर सामान रूप से हो रही हैं, पर उसका अनुभव केवल अधिकारी व संस्कारी जीव ही कर पाता हैं। संस्कार तो सबका हैं क्योंकि मनुष्य जन्म मिलना ही इस बात का ध्योतक हैं कि हमारा संस्कार तो हैं लेकिन अधिकार बनना चाहिए। अधिकार इस तरह बनेगा कि धर्म पर, सच्चाई पर और संतों के बताये हुए रास्ते पर चलो। अधिकार व संस्कार बनना निज कृपा कहलाती हैं। जब निज कृपा होती तभी गुरु कृपा और ईश्वर कृपा होगी। जो अवस्था हम बर्षों की तपस्या से नहीं पा सकते वह गुरु कृपा से क्षण -मात्र में मिल जाती हैं। गुरु नानक देव, कबीर साहब, महात्मा रामचंद्र जी साहब के इतिहास को, उनके जीवन को, देखें तो मालूम होगा कि इनके संग में आने व इनकी कृपा करने से सैंकड़ों जीव तर गए। ऐसे ही संतों की सोहबत में परमात्मा का प्रेम मिलता हैं, और कहीं नहीं मिल सकता। ये लोग दयाल-पुरुष के निज पुत्र होते हैं।*

*सतपुरुष दयाल देश का मालिक हैं। जब वही उतरकर त्रिकुटी पर आता है तो काल पुरुष कहलाता हैं। दयाल पुरुष चौथे देश का मालिक है। संत दयाल पुरुष के अवतार होते हैं। वे चौथे मोक्षदाता हैं। संत कभी भी अपने आपको ज़ाहिर नहीं करते। संत मत में पूरी महिमा गुरु की है। साधारण मनुष्य तो अनाधिकारी होता ही है। संतों के सत्संग और अभ्यास से उसकी रहनी-सहनी बदल जाती है, मन के घाट बदलते हैं और एक दिन वह संतों का, ईश्वर का प्यार प्राप्त कर लेता है और यही प्यार उसको भवसागर से पार कर देता है।*

# पूजा में मन न लगने के कारण और उपाय

( बक्सर, बिहार, ता० २१-१-६९)

जिसको देखो वह यही शिकायत करता है कि उसका पूजा में मन नहीं लगता। मन न लगने की वजह यह है कि तुमने दुनियाँ के काम और उसकी चीज़ों को मुख्य समझ रखा है और पूजा और परमार्थ को गौण। मन तो एक ही है और वह हर समय दुनियाँ की चीज़ों में फँसा रहता है, उन्हीं में आनन्द तलाश करता है, और दुनियाँ को ही सब कुछ समझ रखा है, तो मन दुनियाँ में से निकले कैसे ? परमार्थ का ख़्याल तो अब शुरू हुआ है, इसमें रस और आनन्द तो तब आयेगा जब इसमें घुसोगे और अपने मन को दुनियाँ की तरफ़ से मोड़ कर उधर लगाओगे।

यह सोच लेना कि गुरु-कृपा होगी तो सब ठीक हो जायेगा कमज़ोरी है। गुरु-कृपा तो शुरू-शुरू में एक तरह से hypnotism ( सम्मोहन ) का काम करती है और वह temporary (अस्थायी) तौर पर आपकी सुरत को ऊपर खैंच लेती है जिससे थोड़ी बहुत देर के लिये ऊपर के घाट का रस मिलने लगता है और मन उसमें लगने लगता है। लेकिन यह अवस्था सदा नहीं रह सकती। जब तक स्वयँ कोशिश नहीं करोगे और अपनी सुरत को खैंच कर उसकी स्थिति ऊपर के घाटों में नहीं करोगे तब तक मन को ऊपर के घाटों का आनन्द कैसे मिलेगा, और वह कैसे पूजा में लगेगा ? मुद्दत से यह मन दुनियाँ को ही सब कुछ समझ रहा है, जन्म-जन्मान्तर से वह दुनियाँ में फँसा हुआ है और दुनियाँ में ही रम रहा है। आहिस्ता-आहिस्ता दुनियाँ की क़दर को कम करो और परमार्थ को मुक़द्दम (मुख्य) रख कर उसकी तरफ़ झुको।

एक काम तो आप जन्म-जन्मान्तर से कर रहे हैं और एक काम अब शुरू हुआ है. उसके लिये भी दुनियाँ के और घर के कामकाज में समय नहीं दे पाते. इसलिए जब तक मन पर जब्र नहीं करोगे, वह तो दुनियाँ में ही फँसेगा. जब तक दुनियाँ के कर्मों यानी इन्द्रिय- भोग, मन की

*ख़्वाहिशात और बुद्धि की चतुराई को ही मुक़द्दम (मुख्य) समझ रखा है तब तक मन पूजा में नहीं लगेगा। जब यह सोचोगे कि यह दुनियाँ जो तुम बना रहे हो, थोड़े दिनों का शौक़ है, यहाँ की हर चीज़ बनती है, बिगड़ती है और नष्ट हो जाती है, जब तक यहाँ की असारता को नहीं समझोगे तब तक अपनी तवज्जह (सुरत) को दुनियाँ से हटाकर उस ईश्वर की तरफ़ नहीं लगा सकोगे जो तुम्हारा हमेशा का साथी है। दुनियाँ की क़दर मन से जब तक कम नहीं होगी तब तक मन दूसरी चीज़ को पसन्द नहीं करेगा। दुनियाँ का यह कारख़ाना एक ऐसा जाल है कि इसमें जो एक बार फँस गया वह फँसता ही चला जाता है। आपने मकान बनवाया तो सैंकड़ों झंझट उसको बनाने में सामने आये। कहीं से रूपये का इन्तज़ाम किया तो कहीं से सामान का। धूप, बरसात और ख़राब मौसम में खड़े रहकर उसके काम का निरीक्षण किया। मकान जब बन कर तैयार हुआ तो यह फ़िकर पड़ गयी कि कोई अच्छा किरायेदार मिले। जब किरायेदार मिल गया तो उससे तू-तू, मैं-मैं होने लग गयी। अब उसको निकालने की फ़िकर पड़ गयी। टूट-फूट, मरम्मत कराने की फ़िकर पड़ गयी। मकान बनवाया तो इसलिए था कि आराम और ख़ुशी मिलेगी, लेकिन ख़ुशी मिलना तो दूर रहा उल्टी फ़िकर पीछे पड़ गयी। कहाँ है चैन ? कहाँ है ख़ुशी ? ख़ुशी जिसे तुम दुनियाँ की चीज़ों में तलाश करते हो वह उनमें नहीं है। एक तरफ़ तो तराज़ू का वह पड़ला है जिसमें मनों का बोझ है, यानी दिन-रात के चौबीसों घण्टों में कुछ मिनट छोड़कर दुनियाँ में ही व्यवहार कर रहे हो और उसी के सोच-विचार में लगे हो। दूसरी तरफ़ का पलड़ा बहुत ही हल्का है। परमार्थ के कामों में या सन्ध्या-पूजा में अगर बैठे तो दस-पाँच मिनट के लिये और उसमें भी एक- दो मिनट तबियत लगी तो लगी वरना मन में दुनियाँ के ही विचार आते रहे। अब तुम ही सोचो कि सारे दिन तो दुनियाँ का काम किया और एक -दो मिनट मन पूजा में लगा तो कैसे काम चलेगा ? मन तो उधर ही जायेगा जिधर यह सारे दिन लगा रहता है। मन को उधर से हटाओ। विवेक-बुद्धि से काम लो। सोचो कि दुनियाँ की तमाम वस्तुएँ जिनमें जिनमें तुम आनन्द लेते हो,*

वे नश्वर हैं। कुछ तो नाश हो चुकी हैं और कुछ नाश होने वाली हैं। उनसे अपना मन हटाओ। सख़्ती से काम लो और बुराई से हट कर सत-वृत्ति पर आओ। मन में ख़्वाहिश उठती है, बुद्धि उसका साथ देती है और इन्द्रियाँ उस काम को पूरा करती हैं। सब तरफ़ से मन को भींच कर ईश्वर की तरफ़ लगाओ तब तबियत लगेगी।

हर समय अपने मन पर निगाह रखो कि यह कौन-कौन सी ख़्वाहिशें उठा रहा है और वे तुम्हें किधर ले जा रही हैं ? असली अभ्यास यह है कि उन ख़्वाहिशों को मत उठने दो, अगर उठती हैं तो उन्हें दबा दो। आगे मत बढ़ने दो। इस काम में अपनी कोशिश के साथ-साथ परमात्मा से प्रार्थना करते रहो और उससे मदद माँगो। भाव को बदल कर स्वभाव बना लो। इन्द्रियों में उतना फँसो जितना मज़बूरी की वजह से हो, उनका आनन्द प्राप्त करने के लिये उनमें व्यवहार मत करो। औलाद पैदा करो nation (राष्ट्र) की ख़ातिर न कि इन्द्रिय भोग और आनन्द के लिये. सब चीज़ें for duty sake (कर्त्तव्य मात्र ) भोगनी चाहिये , यही धर्म है। जो मनुष्य इन्द्रिय-भोग में फँसा है , वह मन, जो उससे कहीं अधिक बलवान है , उससे कैसे आपने आपको हटायेगा। आत्मा मन के फन्दे से न्यारी होकर ऊपर कैसे चढ़ेगी ? तम और रज से निकलकर सत पर आओ। तुम्हारे अन्दर नेकी ही नेकी हो जाय, सच्चाई ही सच्चाई हो जाय। बुराई लेशमात्र भी न रहे, तब परमार्थ का रास्ता खुलता है।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने एक कहानी अपने प्रेमियों को सुनाई थी। एक सेठ कहीं जा रहा था। रास्ते में जंगल पड़ा। तीन डाकुओं ने उसे घेर लिया और उसका सारा माल छीन कर उसे रस्सियों के द्वारा पेड़ से बाँध दिया. एक ने कहा - "इसे जान से मार दो। " दूसरा बोला कि रस्सियों से बंधा-बंधा अपने आप मर जायेगा। हमें मारने की क्या ज़रूरत है। यह कह कर वे चल दिये। तीसरे डाकू को को कुछ दया आयी, उसने उस सेठ को रस्सियों से खोलकर जंगल के

*बाहर निकाल दिया और उस सड़क तक छोड़ आया जो उसके घर तक जाती थी। डाकू इससे आगे नहीं गया क्योंकि उसे पुलिस पकड़ लेती।*

*इस कहानी का आध्यात्मिक विश्लेषण यह है कि सेठ जीवात्मा है और जंगल यह संसार है। उसका माल उसके पूर्व जन्मों के शुभ संस्कार हैं। डाकू तमोगुणी मन है जिसका स्वभाव है इन्द्रियों में लिप्त रहना। यह आदमी को जान से मार देता है यानी मनुष्य में आदमी के से गुण नहीं रहते, वह जानवर की दशा में चला जाता है। यही मनुष्य को मार देना है। दूसरा डाकू रजोगुणी मन है जो दुनियाँ की ख़्वाहिशात में फँसाता है और रस्सियों की तरह उसे बन्धनों में जकड़ देता है कि मरते मर जाता है, लेकिन उसकी ख़्वाहिशें पूरी होने पर नहीं आतीं। तीसरा डाकू सतोगुणी मन है जो मनुष्य को नेकी पर चला रहा है, भलाई और सच्चाई उसने अपना स्वभाव बना लिया है। वह बन्धनों से मुक्त होकर सीधे रास्ते पर पड़ जायेगा और यह सीधा रास्ता संसार रूपी जंगल से निकाल कर उसे अपने निज घर यानी परमात्मा के पास ले जायेगा, और आत्मा निर्लेप होकर परमात्मा के दर्शन करती है और उससे मिलकर एक हो जाती है। यही लक्ष्य है और यही मोक्ष है।*

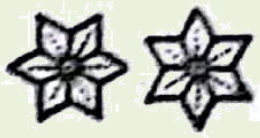

# सागर के मोती

अगर पिया दुसरे को चाहता है तो हमारा भी यह फर्ज़ है किहम भी उसे प्यार करें।

xx xx xx xx xx xx xx

अगर टठोकरें भी मारे तो नुरु का दरवाज़ा छोड़ कर मत जाओ ।

xx xx xx xx xx xx xx

मन के प्रेम की एक पहचान यह भी है कि जिसे प्रेम करता हैं उसे किसी दूसरे को प्रेम करते नहीं देख सकता ।

xx xx xx xx xx xx xx

वह मालिक न मिले ऐसा तो हो नहीं सकता । मिल करे ही रहेगे। तेरी मर्जी ऐसी ही है कि हम बुरे कहलायें तो यही अच्छा है। लेकिन तू अगर यह चाहे कि नहीं सकता । ख्यालात आया करें, बस एक तेरा ख्याल न छूट जाय ।

यार को गलियों में क्योंकर, यार जाना छोड़ दे ।

किस तरह बुलबुल चमस से श्राशियाना? छोड़ दे ।

श्रत्र) बारा' छोड़ दे, बिजलो तड़कना छोड़ दे।

स्ह क़ालिब' छोड़दे या जिस्म को जा? छोड़ दे ।

में न छोड़ूंगा तुझे चाहे जमाना छोड़ दे।

परमसन्त डा० श्री कृष्ण लाल जी महाराज ।